ISSN-2993-4648

शोध उत्कर्ष

Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly Journal

वर्ष 01 अंक – 02

अप्रैल से जून -2023

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly Journal-ISSN-2993-4648
Research ARETE Journal वर्ष-01 अंक -02 अप्रैल-जून-2023

सलाहकार मण्डल (Peer Review Committee)

प्रो. दिनेश कुशवाह
प्रो. एम.यू. सिद्दीकी, सिंगरौली (म.प्र.)
डॉ.अजय चौधरी,नागपुर
डॉ. रेणु सिन्हा,रांची- झारखंड
डॉ. एस. एल. प्रजापति,रीवा (म.प्र.)
डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय सीधी-(म.प्र.)
डॉ.गोविन्द बाथम ग्वालियर (म.प्र.)

संपादक मंडल

प्रधान संपादक
डॉ. एन. पी. प्रजापति
संपादक
डॉ. मंजुला चौहान
कार्यकारी संपादक
डॉ. संतोष सोनकर

लेख भेजने के लिए –Mail-ID- shodh utkasrsh@gmail.com

पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें-
Website:–http://www.shodhutkarsh.com

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly Journal-ISSN-2993-4648
Research ARETE Journal वर्ष-01 अंक -02 अप्रैल-जून-2023

Table of Content

S.N.	Title and Name of Author(s)	Page No.
	सम्पादकीय -	**03**
1.	Max Weber on Ideal Types and Social Relationship - **Ajay Choudhary**	**4-6**
2.	भक्ति आंदोलन और तुलसी का काव्य - **बुद्धिमान पटेल & डॉ.लाल बहादुर सिंह**	**7-8**
3.	हिंदी कहानियों में आदिवासी विचारधारा - **अभिषेक कुमार मीना**	**9-10**
4.	प्रेमचंद के कथा साहित्य में नारी समस्या-**डॉ .दीपा अंटिन**	**11**
5.	दया प्रकाश सिन्हा के नाटकों में चित्रित संवेदना-**वैशाली काशिनाथ गायकवाड**	**12-13**
6.	हमारा शहर उस बरस में साम्प्रदायिकता - **डॉ. संतोष रोडे**	**14**
7.	जनजातियों का राजनीतिक अभिविन्यासः मध्य प्रदेश की जनजातीय समाज का एक अध्ययन- **श्री रामराज सिंह**	**15-17**
8.	Youths and Hobbies- **Sri. Mallikarjun Murigeyya**	**17-18**
9.	स्वतंत्रता आन्दोलन के पूर्व का भील जनजाति का इतिहास - **नीतेश मेश्राम & डॉ. मधूलिका श्रीवास्तव**	**19-20**
10.	पंत के काव्य में मार्क्सवाद, प्रगतिवाद और पर्यावरण चेतना - **सीमा सोनी**	**21-22**
11.	उदय प्रकाश की चयनित कविताओं में नारी संघर्ष का चित्रण- **Mrs.K. Kavitha**	**22-24**
12.	भारतीय लोक संस्कृति : समकालीन परिवर्तन - **अमित कुमार सिंह**	**25-27**
13.	ग्रामीण विकास: गांधी और अम्बेडकर के दृष्टिकोण - **मिलिंद घाटे**	**27-29**
14.	Globalization of Patents and its Impact on Human Rights - **Dr. Appu U. Rathod**	**30-31**
15.	कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में नारी समस्याएँ - **सृजलेखा ब्रह्म**	**32-34**
16.	गूजरी महल संग्रहालय ग्वालियर सामान्य परिचय - **डॉ. गोविन्द बाथम**	**34-38**
17.	The myth and the reality (The man of Indian mutiny,special context of 1857 unsuccessful rebellion hero Tatya Tope) - **Dr. Pramesh Dutt Sharma**	**39-42**
18.	The Rise of Green Industries: Catalyzing Sustainable Development in Post-COVID India in 2023 - **Dr. Renu Sinha**	**43**
19.	Dilemmas and Dynamics: Introspecting the Challenges of Democracy in Pakistan-**Dr. Subhash Kumar Baitha**	**44-47**
20.	हिंदी-उर्दू विवाद और मुसलमान लेखकों पर उसका प्रभाव - **हृदय कुमार**	**48-50**
21.	कुँडुख कत्था नू पुरखा कत्थपण्डी गही महबा - **हेमन्त कुमार टोप्पो**	**51-52**
22.	किसान विमर्श की महागाथा उपन्यास ढलती साँझ का सूरज : मधू कांकरिया - **प्रा.डॉ. एकलारे चंद्रकांत नरसप्पा**	**53-54**
23.	Educational Radio programme: An Effective Method of teaching and learning - **Dr Meenu Dev**	**55-58**
24.	हिंदी की राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा : एक सिंहावलोकन - **डॉ. चंद्रकांत सिंह**	**58-62**
25.	आत्मकथा 'नागफनी' में अभिव्यक्त दलित संघर्ष- **डॉ. रमेश मनोहर लमाणी**	**63-64**

सम्पादकीय ....

दो बात --------

ग्लोबलाइजेशन, बाजारीकरण, पूंजीवाद, इंटरनेट, डिजीटलाइजेशन के युग में शिक्षातंत्र, शैक्षणिक विषयों,शैक्षणिक खोज, अनुसंधान, रिसर्च में गहराई, बदलाव एवं युगानुरूप सार्थकता का होना आवश्यक हो जाता है।शोध-रिसर्च जनित पत्र-पत्रिकाएँ उच्चतम शिक्षा की गुणवत्ता को बहुत हद तक प्रभावित करती है।गुणवत्ता समाज की गति के अनुसार शैक्षणिक शोध-अनुसंधान से ही संभव है।समाज के प्रत्येक व्यक्ति को,व्यक्ति की समस्याओं को मुख्य धारा से जोड़कर सामाजिक विविध समस्याओं के निराकरण से है।

इस दिशा में देखा जाए तो विश्व साहित्य में विविध विमर्शों का दौर 20वीं सदी से आरंभ हुआ, जो अनवरत चलता चला आ रहा है,क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है।भारतीय साहित्य में विमर्शों का दौर 1980-90 के दशक से आरंभ हुआ। विमर्श का अर्थ बातचीत, वाद-विवाद, तर्क-वितर्क से है,किंतु कुतर्क से नहीं ।साहित्य का अर्थ ही है – 'सब का हित' , 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय'।प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य में विविध विमर्श यथा- नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, कृषक विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श, किन्नर विमर्श, स्लम विमर्श, अप्रवासी विमर्श, पर्यावरण विमर्श आदि आदि।

इन विविध विमर्शों में तटस्थ आकलन किया जाए तो वर्तमान में पर्यावरण विमर्श सबसे अधिक आवश्यक हो गया है जो प्राणीमात्र के जीवन को प्रभावित कर रहा है ।जल-जंगल-जमीन लुटते जा रहे हैं ,पहाड़ स्खलित हो रहे हैं,भूधसान हो रहा है,विकास के नाम पर किया गया 'प्रलयंकारी विकास' सृष्टि को लीलने पर आमादा है।किसान फसल लगा रहा है—सूर्य का ताप, आग उगलती धरती,उफनती नदियों का बहाव, बादल का फटना लहलहाती फसलों को बहाव ले जा रहा है।विकास के सारे पैमाने सड़क-मकान-दुकान-बाजार नष्ट हो रहे हैं।किसान कर्ज के बोझ में आत्महत्या करने को विवश है,प्रेमचंद का 'होरी'आज भी असमय मृत्यु को गले लगा रहा है ।दलित-पीड़ित-शोषित वर्ग शिक्षा-स्वास्थ्य के अभाव में अभी भी मुख्य धारा से वंचित है।आदिवासी समाज अपनी संस्कृति-संस्कार से कटता जा रहा है।

जरूरत है वास्तविक कृषकों की (ध्यातव्य है जो राजनीतिक भाषा में कहाने को कृषक हैं किंतु वास्तव में प्रेमचंद के रायसाहब, जामींदार-महाजन-साहूकार, श्रीलाल शुक्ल के वैद्य जी जैसे शोषकों को छोड़कर) आय बढ़ाकर, शिक्षा-स्वास्थ्य-जल-जंगल-जमीन से वंचित आदिवासी समुदाय को विकास की धारा से जोड़कर और सबसे अधिक जरूरत जल-जंगल-जमीन को बचा कर पर्यावरण को संरक्षित करने की हरसंभव प्रयास कर सृष्टि को बचाने की है ,तभी तो निर्मला पुतुल की पंक्तियाँ ख्याल आती है –

"जंगल की ताजा हवा, नदियों की निर्मलता
पहाड़ों की मौन,गीतों की धुन
मिट्टी का सोंधापन, फसलों की लहलहाहट
आओ मिलकर बचायें कि
इस दौर में भी बचाने को
बहुत बहुत कुछ बचा है,अब भी हमारे पास।"

-निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द।

नित नवीन चिंतन के लिए शोध उत्कर्ष बहु विषयक पत्रिका सतत प्रयास रत है । उम्मीद है आप सभी इस पत्रिका से जुड़ेंगे और दिन-प्रतिदिन देश के कोने -कोने तक पहुचाने में अपना योगदान जरुर प्रदान करेंगे, ऐसा मेरा मानना है ।सलाहकार मंडल के सभी महान हस्तियों के मुल्यांकन और मार्गदर्शन से ही यह पत्रिका अपने दायित्व में खरा उतर पायेगा । साथ ही हमारे संपादक मंडल के डॉ. एन.पी. प्रजापति,डॉ. मंजुला चौहान,डॉ. संतोष सोनकर जी का अहर्निश सहयोग के परिणाम स्वरूप- शोध उत्कर्ष का यह दूसरा अंक आप सबके अवलोकन हेतु ऑनलाइन प्रस्तुत है ।

आप सभी को स्वस्थ्य जीवन की शुभकामनाओं के साथ सादर... जय हिन्द ,जय भारत ...i

- डॉ. रेणु सिन्हा

दिनांक-15.07. 2023

Max Weber on Ideal Types and Social Relationship

Ajay Choudhary
Associate Professor
P.G.Department of Sociology
Hislop College, Nagpur

Social sciences explore and investigated the society nuisance employing different methodological tool like functionalistic, materialistic approaches but the Weber, instead,emphasising on structural orientation, moved towards the individual understanding to portrait discomfort existed in society. Thus, the Weber being scoologist and theoretician, fought with both reductionist and surface approach carried by social scientist and historians respectively.His un-comfortability reflected into his rejection of prevalent evolutionary and mono casual theories consist of idealistic or materialistic, mechanistic or oraganistic design. Both the reductionism and historians persistently search for hidden deeper causes and ingrained aversion opposite to historian transcendent concept. Taking this preview under consideration, he focused utility of concept and typologies to provide advantages for the researcher. Based on this, he developed the sociological theory and formulated fundamental idea based on social action. It is interesting to note that Weber's scrutiny of social action, in fact, associated with individual ideal type and historical ideal types which emerged to 'general ideal types'.

Understanding the Historical and Sociological Ideal Types-The construction of historical ideal types assist the researcher to explore the various dimension existed in historical juncture. Such approaches enforced the researcher to connect with prevalent social realities. The historical ideal types could not locate into the study in uniform manner. Thus, the weber, for the sack of methodological approaches, categories historical ideal types into three parts. Firstly, individual involved into the category of facts actually constructed in the historical time and space which is nothing but an historical construction. It specifies to achieve the definite subjective matter of social sciences and help to draw all ideal types that suited to subjective meaning of social actors. This must be considering the beginning of exploration of facts for the historians. Secondly, historians approach related to specific historical boundary in the context of understanding the meaningful action as it restricted to particular time and society which is very imperative from epistemological perspective. Thirdly, epistemological question of historians completely depend on what concept and facts actually posed to selected groups of society for preservation of uniqueness of the facts. The primary object explained by weber in regard to such selected facts that synthesised into the conceptual tools for the utility of social scientist.At this juncture, the weber definition of ideal types becomes prominent in which he stated:-**"is formed by the one-sided accentuation of one or more points of views and by the synthesis of a great many diffuse, discrete, more or less present and occasionally absent concrete individual phenomena, which are arranged according to those one- sidedly emphasized viewpoint into unified analytical construct" (Weber 1958: 90)**

This clarifies that weber conclusive remark of defining the ideal types from the categories of facts constructed from the general sociological ideal types that alike with historical types. The rationality behind formulation of fact as part of analysis in both the cases and social actor enable to bestow meaning. It shows historical ideal type, as per the concerned of fact, limited by the historical period but on the part, the sociological investigation provided much more opportunities to gather facts from different contemporises society for shaping the general sociological ideal types. Hekman stated, in this preview, historical context of facts majorly imperative for constructing historical types and factors remain relevant only if the question answer attached to social institution or practices found in the different societies in various times periods (Hekman 1983: 42). In this regard, Weber's sociological theory provided researcher various dimensional concept and empirical types which preconditioned for comparative mental experiment and imaginative estimation without taking cognizance casual explanation the history is impossible. Thus, sociologist often suffers in duality in relation to develop generalisation and explaining particular cases.

Comparative Ideal Types and Free From Bias-The Weber's idea of comparative approaches counters the theories of historical sequences and theories of universal stages and rejected rural and urban contemporaries theories revolved around the economic development. Although, general cultural development phenomena closed to weberian understanding but his focused more on the dynamics of specific historical phenomena. For example, Bismarck personality may provide political, administrative idea, etc. but unable to display other dimension like culture, traditions, values which can extract from the

dress code of Bismarck. This insight assist to examine the development as well as declination of society satisfy the purpose to achieve perfect reality. Thus, the several comparative devices like identification of similarities as first step in casual explanation, negative comparisons, illustrative analogy and metaphysical analogy, for weber, nothing but to achieve ideal type. The purpose of ideal type is comparison that estimates the primary answer to scientific notion of law and evolutionary theories. Interestingly, weber's approach of ideal type is more logical in relation to comparative strategy. Specifically understanding history, it is necessary, as per weber, to locate the specific aspect in comparative ideal types with the stages of historical reality. Here, the task of researcher is not examine the real or unreal fact but must concentrate on selecting the conceptual appropriate for the problem. This amplify involved the dynamics and alternative course of ideal types. It is not embedded in evolutionary approach, instead, have development dimension. Without historical rules of experience, the ideal types could not be applied as heuristic proposition. Ideal types not only direct the researcher to establish with typologies like differentiating modern vs. traditions or new vs. old condition but also able to explore the difference in causes. Through the above approaches, the secular phenomena could be searched out from the excluded historical process and culturally essential aspect would identify the modernity order in causal chain of history. Thus, the ideal type is methodological tool applied by weber to emancipate researcher from the personal bias and intact him/her in the concept of 'Value neutrality'. This would assist the researcher to embed from the preconceived notion responsible to imbibe the mind of individual through general laws.

Ideal type – Mental Construction and Tool of Investigation-For the weber, the ideal type is not individual concept but a characteristic tool of social sciences.Therefore, the ideal type must be observed as cultural significant variant that carry the meaning by the individual in his/her actions. Such process of selecting the prominent elements of social structure that profoundly shape the meaning in interactive relationship and logically compatible with theoretical interest of investigation to associate with social concept (Hekman 1983: 122). Basically the ideal types as a concept draw from the historical effect and ethical postulates. This effect on individual must be understood, firstly from the psychological perspective rather logical conditioned. Despite, the synthetic historical idea actually prevail in public domain dominate its psychic process. Consequently, the ideas sustain by the individual remain error position but it could be employed and evaluate through the judging process. Weber stated in the context that ideal types disconnect with any value judgement and perfection but remain logically pure (Weber 1978: 98). He further added that ideal types in the form of brothels as well as religion or remain technically expedient in relation to police ethics and exact opposite to it (ibid). This provides the impression that ideal type explicitly a unique character of cultural phenomena. It means that ideal types applied as methodological connection to other facts of society. In other words, the development sequences perceived to be ideal types in the form of heuristic value and possibly, in the particular approach, the researcher might be confused to deal difference between ideal types and reality. Emancipating from the bias character of research, the heuristic device become the imperative element of comparison of ideal types and facts. Here the ideal type can be formulated without having any prediction and merely remain hypothesis to study the certain society like Gupta period was golden period in Indian history. In this regard, certain ideal type becomes guide of investigation precisely to non-golden era of Indian history that would possibly manifest the peculiar characteristic of society as well as its historical significance. Such divergence form of reality provides the space to test the hypothesis. This procedure may reveal the methodological doubt to sharply distinguish between ideal typical development construction and history. The construction of development sequence and conceptual classification of certain culture structure through the ideal type would reflect the initial stage of religious flavour began with God and how in meantime as family transformed into kinship relations around God. In fact, these two ideas a intervened into the inherently classify: selection of conceptual criteria for analytical classification of concept and other part, empirically arrangement of space, time and casual relationship that persist in society. It provides the impression about mind of human beings how the sense of generic concept of ideal type rule thoughts pattern of human action. Therefore, weber indicated ideal types are purely mental constructed. This concept is not end in itself but a medium to comprehend the 'understanding human phenomena' that reflect concrete individual perspective. It often perceived historical content a necessary subject to change as they are not precisely and clearly formulated on all occasion. It implies to understand the difference in the ideal analytical character and historical reality so that confusion in this regard should not survive. Since the definitive historical concept should not consider as general phenomena or ultimate end view of guiding ideal values but sever and unambiguous concept become relevant to the individual view point, direct the individual interest of

at given time with clarifying the limits of its validity (Weber 1978; 107).

Ideal types, Meaning and Social Relationship- The study approach at primary stage initiated proceeds with theoretical and conceptual understanding of social reality. These social realities often subscribe the individual through historical context or its effect on the contemporary issues. Form the research perspective, the ideal type carried the mental imagination for the exploration different nuisance percolated in the society. This attempt assist the researcher to explore the validity and in-validity of social reality which he/she is about to study. While advancing the research, it is imperative to comprehend the interpretative understanding of individual's social action which he/she perpetuates in the form of narratives, experiences and his/her act in subjective manner. These interactive discourses provide the spaces between the researchers and respondent to comprehend his/her motive to concern research subject. It focuses the urgent requirement for researcher to embed sociological theories and concept par with research field. Prior to this, the researcher formulation of ideal types based on his academic exercise and enlarge his research understanding through the meaning omitted by the Individual's social action. The Gidden rightly stated that social action ensure the meaningful action through human conduct consist of past, present, or expected future behaviour of other (Gidden 1971:151). Here, the acts of individual in the context of social relationship actually reciprocate as their actions are related to each other. It rightly to mention that individual experience of social relationship display the act and behaviour of others to produce complete picture of social reality by attaching the meaning to its interactive social relationships. This indicates the individual action actually oriented towards the meaningful content and portrait social relationshiexclusively depends on the probability of social action that carried the meaning irrespective of bias exist in it. Here, the social relationship as words not necessarily indicate cooperation or non-cooperation but mutual orientation of action expresses the nature of social action consist of conflict, hostility sexual attraction, friendship etc. in where the meaning become prominent that assist to credit to formulated the theoretically pure type. The social reality through interpretative understanding based on social action could not access through metaphysical or normative sense. The rationality behind rooted into the subjective meaning that vary from the similar engaged group, member or individual who are mutually oriented towards the same given social relationship but in objective manner. It indicates that the subjective meaning of social relationship, possibly, convert into political relationship based on solidarity in relation to conflict of interest. It completely depends what type of terminologies employed or continuity of change subscribe or develop in the context of old or new or generate the new meaning through this process of interactive relationship. Here, I would like pull the attention that meaning of social action may remain constant or change which determine the mutual agreement of two parties and commit to reveal the future behaviour depend on the what type of social relationship would evolved in future course of time. This is because, each party percolate the validity of its rational thinking and action. Therefore, the action of individual or party remain rational in two sense, firstly based on the utility of meaning of action under the preview of expectation and secondly, endeavour to recognize absolute value of agreement that intended him/her to entre in it.

Conclusion-Max Weber emphasised that ideal types as imperative research tool to comprehend social reality of society. He declines the idea of collective perspective in the form functionalist, materialistic to study the society. For him, the individual social action carries the meaning that may vary from span of time that transforms the meaning of structure. It implies that Individual and its social action actually a central theme for investigate the social currents exist in society. The meaning of social action, in fact, rooted into the ideal types that often provide the spaces to compare social realities by exhibiting relationship between historical ideal types and general ideal type. Here, the Max weber, actually, draw the meaning of individual action from the present scenario and absentee of individual in past, provide the tool tom present one to acquire the historical ideal types which specify the meaning of specific historical events. This approach applicable to investigate rationally and scientifically without losing its interest of study and ideal types perpetuate to precede the research in un- bias manner. In this process, the social scientist obtains the opportunity to scrutinise the social relationship in the paradigm of ideal types which is imperative part of investigating the social structure of society.

****

Reference:

1. Giddens, Anthony.197l.Capitalism and Modern Social Theory, An Analysis of
2. The Writing of Marx, Durkheim, Max Weber,Cambridge University press.
3. Weber, Max.1958.Methodology of social sciences, Macmillan publication.
4. Hekman j, Susan. 1983. Max weber and Contemporary Social Theory, University
5. of Notre Dame Press.
6. Weber, Max. 1978. Economy and Society: An Outline of Interpretative Sociology.
7. ed. By Guenther Roth and Clause Witch, University Of California Press.
8. Weber, Max. 1978. Selection in Translation (ed) W.G.Runchiman, Tr by Mathew,
9. Cambridge, CUP.

भक्ति आंदोलन और तुलसी का काव्य

बुद्धिमान पटेल[1]
शोध छात्र - हिन्दी
अ.प्र. सिंह वि.वि., रीवा (म.प्र.)

डॉ.लाल बहादुर सिंह[2]
निर्देशक
सहायक प्राध्यापक-हिन्दी
शा.महा.सिहावल, जिला सीधी (म.प्र.)

भूमिका -

भक्ति आंदोलन का लक्ष्य है मानुष-सत्य या कि मनुष्यत्व की रक्षा और विकास। भक्ति काव्य की सम्पूर्ण रचनाशीलता इसी लक्ष्य की ओर उन्मुख है। भक्त कवियों की दृष्टि से मानुष सत्य के ऊपर कुछ भी नहीं है। न कुल, न जाति, न धर्म, न सम्प्रदाय, न स्त्री-पुरुष का भेद, न किसी जाति का भय और न लोक का भ्रम। इन सबका दुराग्रह हमेशा मनुष्यत्व के विकास में बाधक बनता है। इस लिए इन की भक्ति काव्य में निर्द्वंद और निर्भीक आलोचना है। समाज में तरह-तरह के भेद-भाव पर टिकी व्यवस्था की जगह मनुष्यत्व पर आधारित समता मूलक और मानवीय जनता के प्रेरणा और शक्ति पाती है। भक्ति की अलख यानी ईश्वर को जगाना है। भक्ति आंदोलन तेरहवीं-चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी में हुए महत्वपूर्ण राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तनों के कारण बिकसित हुआ जो कबीर, नानक और रविदास की कविताओं में अपने चमोत्कर्ष पर मिलता है। यह आंदोलन नये परिवर्तनों की देन है।

मध्यकाल के हिन्दी साहित्य में भी छुट-पुट रूप से हमें इस संबंध में अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। मुल्ला दाउद, कबीर, नानक और सूरदास का साहित्य विशेष रूप से दृष्टव्य है। ये व्यापारी देश के अंदर हो व्यापार नहीं करते थे। बल्कि दूसरे देशों में भी जाते थे। इनके साथ भारत की कला साहित्य और संस्कृति बाहर गई और वहाँ से अनेक विचारधारा और साहित्य भारत में आया।

यदि भक्ति आंदोलन के पास समकालीन समाज व्यवस्था के विकल्प की परिकल्पना का आभाव था। तो एक वैकल्पिक समाज व्यवस्था की कल्पना का आधार उस समाज की संकट ग्रस्त स्थिति में देखा जा सकता है। यह ऐसी संकट ग्रस्त स्थिति है जिसका समाधान एक नई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की स्थापना में ही संभव है। ऐसी स्मृतियाँ और उनके समाधान यूरोप के इतिहास में बहुत स्पष्ट रूप देखे जा सकते हैं। जब दास प्रथा पर आधारित समाज के संकट का समाधान सामंती समाज तंत्र में ही सम्भव हुआ और सामंती समाज के संकट का समाधान करने के लिए पूँजीवादी व्यवस्था स्थापित हुई। जिसके पश्चात् समाजवाद का उदय हुआ।

भक्ति कालीन संतों ने छोटे किसान, जुलाहे और अन्य छोटे-छोटे व्यक्तियों की तुलना ईश्वर की है। इस तरह इन छोटे-छोटे लोगों के स्तर को अपनी कल्पना से ऊचा उठाया है। उन्होंने यह कल्पना ईश्वर और उसके दरवार के प्रतिरूप में की है। दाददयाल ईश्वर को साहिब सुल्तान, महाराजा राव आदि की संज्ञा देते हैं और उनके दरवार में दासियों, कवियों, नर्तकियों, नगाड़े बजाने वाले, खजानची और दूतों की उपस्थिति की कल्पना करते हैं। इस दरवार में सम्राट के सभी कर्मचारी मौजूद रहते हैं।

भक्ति भाव - आज भारतीय समाज एक विकट संकट से गुजर रहा है। यह संकट जितना सामाजिक और राजनीतिक उससे अधिक सांस्कृतिक है। क्योंकि संस्कृत गोला-बारूद से ही राजनीतिक की लड़ाई चल रही है। सांस्कृतिक प्रतिक राजनैतिक युद्ध अस्त्र-शस्त्र अपनाये जा रहे हैं। इस संस्कृति की राजनीति से नई संस्कृति जो पैदा हो रही है। वह धार्मिक उन्माद साम्प्रदायिक संकीर्णता और मानव द्रोह की आंधी पर सवार होकर आगे बढ़ रही है। और भक्ति आंदोलन के उदात्त मानवीय मूल्यों सामाजिक आदर्शों और सांस्कृतिक आकांक्षाओं की विरासत को तहस -नहस कर रही है।

कलयुग केवल नाम अपारा।
सुमरि सुमरि नर उतरहि पारा।।
कृत युग सब योगी विज्ञानी।
करि हरि ध्यान तरहि भव प्राणी।।

तुलसी दास भक्तिकाल और भक्ति आन्दोलन की परिधि के एक महत्वपूर्ण कवि के रूप में स्थापित है। जिनकी लोकप्रियता आज भी बरकार है। वह अपने कवित्व के लिए लोकप्रिय हैं या विचार के कारण या फिर धार्मिक रचना के कारण। जाहिर सी बात है कि उनकी लोकप्रियता का इनमें से कोई एक कारण नहीं बल्कि सभी का एक साथ समन्वय के कारण उनकी लोकप्रियता बनी हुई है। तुलसी का समय भारत के राजतन्त्र का समय है और अब लोकतंत्र का संवैधानिक भारत है। स्वाभाविक है कि हमारी किसी रचना के प्रासंगिक और कालजयी होने का आधार आधुनिक संदर्भ होगा। इस परिप्रेक्ष्य में जब हम तुलसी को देखते हैं तो तुलसीदास कई बार जटिल कवि के रूप में सामने आते हैं जिनको समझना कई बार लगता है कठिन है।

आधुनिक समय में तुलसी के इन सब विचारों से कत्तई भी सहमत नहीं हुआ जा सकता है। इनका रामराज्य विसंगतियों से भरा हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं की तुलसीदास वर्णव्यवस्था के कट्टर समर्थक थे। उन पर परम्परा का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। वह प्रभाव वर्णव्यवस्था और ब्राह्मणों के प्रति अनावश्यक रूप से आस्थावान बना देता है। तुलसी के रामराज्य में अयोध्यावासी उदार, परोपकारी ही नहीं, विप्रों के चरणसेवक भी हैं-

सब उदार सब पर उपकारी।
बिप्र चरण सेवक नर नारी।।

भारत में हिंदुत्व की राजनीति का आधार भी राम ही रहे है न कि कृष्ण। कबीर के यँहाँ जो क्रांतिकारिता और ओज मिलता है समाज के बुनियादी समस्या से टकराने का जो साहस है उस रूप में तुलसी हमें निराश करते है। तुलसी यहाँ ऐसा लगता है कि जैसे उन्होंने पूरे भक्ति आन्दोलन को हथियाकर वर्णाश्रम और ब्राह्मण धर्म का विजय पताका फहरा दिया हो। भक्ति आन्दोलन का जो जनवादी रूप था, जाति विरोधी जो भूमिका थी उसके विरुद्ध तुलसीदास पुराण मतवादी स्वरूप को प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान राम के चरण कमलों अनुरक्त एवं उनकी पूजा अर्चना को ही सर्वश्रेष्ठ धन कहा है -

श्लोक -

आन्नद काननें हास्मि अंगजमस तुलसी तरू:।
कविता मंजरी भाँति, राम भ्रमर भूषिता।।

भावार्थ - काशी रूपी आंनद वन में तुलसीदास जी तुलसी का एक सुन्दर चलता फिरता पौधा है। जिनकी कविता रूपी मंजरी बड़ी ही सुन्दर है जिसमें राम रूपी भवरा सदा मडराया करता है। तुलसीदास जी ने अपने काव्य में नवधा भक्ति काव्य जो वर्णन किया है। बहुत ही मार्मिक और रोचक है। नवधा भक्ति को पड़ने, सुनने में जो आनन्द आता है। उसका वर्णन करना संसारीजन मानस के बस की बात नहीं हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी के कृतित्व के इस समीक्षण से अनेक बाते स्पष्ट होती है।

जिनको ध्यान में रखकर न चलने से हम उनके किसी एक पक्ष की गहराई में ही गोते लगाते रहते हैं और उस विशाल रचनाकार के दूसरे छोड़ पर क्या है यह नहीं जान सकते हैं। रामचरित मानस उनकी महती कृति है। फिर भी उनकी महती कृतिया भी अपनी अलग विशेषताओं से सम्पन्न है। यह भी हमारे लिए समझना आवश्यक है। तुलसी दास के दृष्टि कोण में भक्ति भाव प्रधान रूप से होते हुए भी उनकी भावना सामाजिक है। अतएव देश और समाज की रीति-नीति और संस्कृति का जो रूप हमारे सामने रखा है। उससे उनके सामाजिक और राजनैतिक आदर्श स्पष्ट होते हैं।

दिव्य दूर दृष्टि -तुलसी जी की दृष्टि निज वाणी की पावनता तक ही सीमित नहीं विशाल जन समुदाय भी निरंतर उनकी दृष्टि में रहा है। काव्य कला की उपयोगिता जनहित में ऐसी उनकी स्पष्ट धारणा है-

कीरति भनिति भूति भलि सोई।सुरसरि सम सब कहहित होई।।

गंगा के लोक मंगलकारी स्वरूप के संबंध में प्रचलित जन विश्वास को तुलसी ने यहाँ कविता के साथ अत्यंत सार्थक रूप से सम्बद्ध किया है। लोक मंगल की संभाव्यता उसकी रचना में होगी जो भ्रम और पाप ताप के निवारण में समर्थ है। भक्तिकालीन कवियों की इस अवधारणा के संबंध में हिन्दी के विभिन्न समीक्षकों की प्रतिक्रियाओं का आकलन उचित होगा।

गुलाबराय के अनुसार- तुलसी का सृजन सिद्धांत हित समन्वित हृदयवाद था। भागीरथ मिश्र ने इस संबंध में यह तथ्य उद्धारित किया है। हित करने वाली कविता वही हो सकती है। जो हमारे यथार्थ जीवन के तत्व धारण करती हो। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मत में तुलसी ने केवल ''स्वान्तः सुखाय'' काव्य रचना नहीं की है। अपितु परान्तः सुखाय का भी उन्होंने ध्यान रखा है। तारक नाथ वाली ने भक्ति कालीन साहित्य की प्रासंगिकता निबंध में अत्याधुनिक संदर्भ में इसकी व्याख्या इन शब्दों में की है। भक्तिकालीन का व्यापक सामाजिक सत्य से संपृक्त है। मगर इस संपृक्त का मूलगुण अध्यात्म है। इस विषय में सभी एक मत है कि युगीन मूल्यों से अनुबद्ध हितवादिता कविता के अत्यधिक धर्म में से एक हैं।

तुलसी दास रामचरित मानस के बजाय अपने दूसरी रचनाओं में यथार्थ के ज्यादा करीब दिखाई देते है। कवितावली, दोहावली और विनय पत्रिका में उनके जीवन का यथार्थ खुलकर आया है।

खेती न किसान को भिखारी को न भीख
बलि बनिक को न बनिज न चाकर को चाकरी
जीविका विहीन लोग सीदमान सोचबस,
कहै एक एकन सौ कहाँ जाई का करी।

तुलसी के समय भक्ति आंदोलन अपने चरम पर था। उत्तर और दक्षिण में कई धामक विचार और संप्रदाय फैले हुए थे। दक्षिण में आलवार और नायनार संत-भक्तों ने भक्ति को प्रपत्ति से जोड़कर जनसाधारण के लिए सुलभ कर दिया। आंशिक प्रतिरोध के बाद भक्ति के लिए वर्ण और जाति की बाधाएं भी खत्म हो गई थीं। रामानुजाचार्य, विष्णु स्वामी, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य आदि विचारकों ने भक्ति को एक दार्शनिक आधार भी दे दिया था। रामानंद आदि के माध्यम से दक्षिण का भक्ति आंदोलन उत्तर भारत में भी लोकप्रिय हो रहा था, लेकिन यहां स्थिति अलग थी। यहां दक्षिण से अलग जनसाधारण में अभी भी बौद्धमत की जड़ें थीं और उससे भी अधिक यहां इस्लाम मौजूद था और खास बात यह कि यह शासकों का धर्म था। भक्ति आंदोलन ने यहां प्राप्ति के साथ बौद्धमत और इस्लाम के प्रभाव में अलग रूप भी धारण किया। बोद्ध मत की परंपरा यहां सिद्धों और नाथों से होती हुई संत मत तक आई। संत मत ने समाज में जीवन विरत साधु-संयासियों को खूब को प्रश्रय दिया। भक्ति आंदोलन ने न्याय और समता आधारित जीवन और व्यवस्था के लिए माहौल बनाया, लेकिन इससे शैव, शाक्त, वैष्णव, जैसी संकीर्णताएं और मत-मतांतर भी बढ़े। एक और परिवर्तन हुआ- श्रीच समझी जाने वाली जातियों में कई पहुंचे हुए महात्मा हो गए थे, उनमें आत्मविश्वास का संचार हो गया था, पर, जैसा कि साधारणतरू हुआ करता है, शिक्षा और संस्कृति के अभाव में यही आत्मविश्वास दुर्वह गर्व का रूप धारण कर गया थाश् तुलसी भक्ति आंदोलन के इन बनते-बिगड़ते रूपों से अवगत थे। उन्होंने रामचरितमानस अपनी राह इन सबके बीच में रहकर, इनके साथ अंतर्क्रिया से बनाई। भक्त कवियों ने राम के नाम को आराम से बढ़कर माना है। इस संबंध में गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं-

राम सो बड़ो है कौन,मोसों कौन छोटा?
राम सो खरो है कौन,मोसों कौन खोटो?
तुलसीदास ने मानस में,गुरु वंदना करते हुए कहा है कि-
'बंदउ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि '!

तुलसीदास जी को सगुण भक्ति काव्य धारा में इसीलिए शामिल किया गया कि वह सगुण उपासकों में से प्रतिष्ठित कवि हैं। सगुण विचारधारा का कवि ईश्वर को सगुण यानी सभी गुणों से युक्त परम उससे भी परे साकार यानी कि वह ईश्वर जगत में रूप धारण करके अवतरित होता है।

भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने सभी धर्मो की आधारभूत समानता पर बल दिया। एकेश्वरवाद का प्रचार किया। भक्ति आन्दोलन का भारतीय इतिहास में विशेष महत्व है। इसने भक्ति का अक्षय स्त्रोत खोल दिया। संस्कृत तथा क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य में वृद्धि हुई। मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन से समाज सुधार के साथ-साथ साहित्य, धर्म, की कीर्ति में वृद्धि हुई।

तुलसीदास जी ने सभी क्षेत्रों में भक्ति आंदोलन चलाकर सांसारिजन मानस को निर्गुण, भक्तिधारा से सगुण भक्तिधारा की ओर मोड़ देने का काम किया है। रामचरितमानस काव्य शास्त्र उसका जीता जागता उदाहरण है। भक्तिभाव, भक्ति रस, भक्तिमार्ग को काव्य में प्रतिपादित कर धर्म के क्षेत्र में सभी को जोड़ने का काम किया है। नवधां भक्ति को कलात्मक रूप से एवं श्रवण के माध्यम से लोगों के बीच में अलख जगाकर भक्ति भाव, भक्तिरस भरने का काम किया है। मानव सम्यता के आदिकाल से ही उसने अपनी परिस्थितियों और वातावरण को समझने का सतत् प्रयास किया है। सुवरी जायसवाल के शब्दों में विभिन्न धार्मिक आस्थाए इस प्रक्रिया की उपज है और उनकी मानव के सामाजिक एवं भौतिक परिवेश से घनिष्ट संबंध है। परन्तु यह द्वन्द्वात्मक है। यंत्रवत निर्धारित नहीं जहा एक ओर धार्मिक आस्थाओं का मूल मनुष्य के सामाजिक और पार्थिक परिवेश में खोजा जा सकता है। वही यह भी निश्चित है। उसके धार्मिक एवं नैतिक आदर्श अक्सर मार्ग चयन में उसका दिशा निर्देश करते हैं और इस प्रकार उसके परिवेश के निरूपण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। भक्त विचार धारा के ऐतिहासिक अध्ययन से यह बात स्पष्ट रूप से चरितार्थ होती है। भक्ति का नाम भगवान है भक्ति का लिया भगवान को पाने के बराबर है। तुलसी, कबीर, मीरा, केशव, सूर इत्यादि जितने भी भक्तिधारा के कवि है भक्तिरस से सराबोर होकर भक्तिभाव भरेन का काम पूरे जगत के प्राणीओं में किया है। इन कवियों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है, तुलसी दास जी ने अपने काव्य में भक्ति की धारा वह दिये है। इसीलिए वे आज पूरे जगत में प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने कवितावली दोहा बली में कूट-कूट कर देखने को मिलता है। तुलसी दूर दृष्टा से वे वर्तमान भूत भविष्य सबके ध्यान में रखकर भौतिक जगत को दिशा देने का काम किया है।

****

संदर्भ:-
1. हिन्दी भक्ति साहित्य दिल्ली 1965, पृ. 57, 72
2. पदमावत जायसी, ग्रंथावली काशी पृ. 334
3. रामचरित मानस प्रथम सोपान, सं. 7
4. लोकवादी तुलसी दास- विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी
5. भक्ति आन्दोलन का एक पहलू- मुक्तिबोध
6 .दोहावली- तुलसी दास

हिंदी कहानियों में आदिवासी विचारधारा

अभिषेक कुमार मीना
शोधार्थी (पीएचडी)
हिंदी विभाग हैदराबाद विश्वविद्यालय, तेलंगाना
Mob. 8741850384

'अस्मिता' का सामान्य अर्थ 'मैं' से है अर्थात अस्मिता निजत्व से परिचय कराता है तथा स्वत्व का बोध कराता है जिसकी प्राप्ति हेतु मनुष्य सर्वदा संघर्षरत या प्रयासरत रहता है। भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज है, और अस्मिता के उदय की बात सबसे पहले इसी वर्ण व्यवस्था को लेकर आने लगा। यह वर्ण व्यवस्था असमानता के नियम पर आधारित थी, इस व्यवस्था में वर्ण, लिंग, जाति को आधार के रूप में लिया गया।

अस्मिता मूलक विमर्श के अंतर्गत वे सारे विषय समाहित होते हैं जिनके साथ मनुष्य की हमको जोड़कर देखा जाता है और जिन्हें हाशिए पर लाकर छोड़ दिया जाता है। प्रमुखतः स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि विमर्श इसके अंतर्गत आते हैं। अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टि से आदिवासी समुदाय बाकी सभी समुदायों से पृथक है।

आज दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श साहित्य के सामने चुनौती बनकर खड़े हुए हैं। यह उसी नवजागरण का परिणाम है। दलित साहित्य और स्त्री साहित्य की बातों को लेकर विविध प्रश्न उठते हैं। परंतु अपने लोक संस्कृति एवं परंपराओं का संरक्षण केवल आदिवासी समुदाय ही कर रही है। हिंदी में आदिवासी शब्द का प्रयोग देश के मूल निवासियों और उनके वंशजों के लिए होता है जिन्हें संवैधानिक भाषा में अनुसूचित जनजाति कहा जाता है। आदिवासी समुदाय वो होते हैं जो आदिम युग से अपने मूल प्रदेश अथवा क्षेत्र में अपने मौलिक परिस्थितियों के साथ जीवन निर्वाह कर रहे हैं। उन्हें मूलवासी, वनवासी आदिमजन, जंगल पहाड़ में रहने वाला जैसे विविध नामों से पुकारा जाता है।

आदिवासी विचारधारा को अगर हम समझने का प्रयास करेंगे तो यह पाएंगे कि यह विचारधारा जो आदेश से जंगलों में निवास कर रहे हैं जिन्हें अपने अधिकारों के बारे में जानकारी नहीं है तथा जिन्हें अतिरिक्त धारा में रखा गया है। उन्हें मुख्यधारा में लाने का प्रयास है। आदिवासी साहित्य में दलित की तरह किसी वाद या विचारधारा नहीं है। आदिवासी विचारधारा को समझने के लिए हमारे समक्ष रांची घोषणापत्र है, जिसके अनुसार आदिवासी साहित्य की बुनियादी शर्तें उनमें आदिवासी दर्शन का होना है जिसके मूल तत्व हैं-

1. प्रकृति की लाए दाल और संगीत का जो अनुसरण करता है
2. जो प्रकृति और प्रेम के आत्मीय संबंध और गरिमा का सम्मान करता है
3. जिसने पूर्वजों की ज्ञान विज्ञान कला कौशल और इंसानी बेहतरी के अनुभवों के प्रति आभार हो
4. जो समूचे जीव जगत की अवहेलना नहीं करें
5. जिसने जीवन की प्राप्ति आनंदमई आदत अदम्य जिजीविषा हो
6. जो धरती को संसाधन की बजाय मां बनकर उसके बचाव और बचाव के लिए स्वयं को उसका संरक्षक मानता हो
7. स्वानुभूति, सहानुभूति की बजाय सामूहिक अनुभूति जिसका प्रबल स्वर संगीत हो
8. जिनमें रंग लिंग धर्म नस्ल आदि का कोई विशेष आग्रह न हो
9. जो सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता और सामंजस्य को अपना आधार मानते हुए रखरखाव में विश्वास रखता हो।

आदिवासी विचारधारा में इस प्रकार कुछ बिंदु हैं जो इसको अन्य विचारधारा से अलग करता है।

जब हम आदिवासी स्त्री के बात करते हैं तो हमारे समक्ष उसकी स्वतंत्र संघर्षशील एवं आत्मनिर्भर छवि सामने होती है। भारतीय समाज और संस्कृति की तुलना में आदिवासी स्त्री यहां प्रारंभ से ही स्वतंत्र रही हैं, चाहे प्रेम हो या स्वतंत्रता हो या पात्र चयन करने में हो, वह सदा सर्वदा आत्मनिर्भर रही हैं और यह एक ऐसी विशेषताएं जो अन्य स्त्रियों से अपने आप को पृथक करती है। मेहरुन्निसा परवेज ने अपनी कहानियों में इन्हीं आदिवासी स्त्रियों को चित्रित ही नहीं बल्कि स्वाबलंबी भी बनाया है। वे कमरतोड़ कार्य करने के पश्चात अपने पूरा परिवार का भरण पोषण करने में समक्ष होती हैं। मेहरून्निसा परवेज ने आदिवासी स्त्रियों की शोषित रूप के साथ ही एक कदम आगे जाकर उन्हें आदिवासी स्त्रियों में विरोध करने की क्षमता को भी जगाया है। आदिवासी समाज में स्त्री के ऊपर हो रहे अत्याचार शोषण को देखकर स्त्री को बिठाए रखना उनके लिए असह्य साबित हुआ। उसे अपनी स्त्री पात्रों को विद्रोह के धरातल पर उतारने का प्रयास करती हैं। वे अपनी कहानी 'कानी बात' में दल्हे सा और उसकी मां जंगलों में काम करती हैं और उसका पिता खेतों में काम करता है। वह और उसकी मां जंगलों से लकड़ी काटना, मछलियां पकड़ना जैसे कार्य करती ही रहती हैं, साथ ही मुर्गी पालन का भी कार्य करते हैं। इसी प्रकार 'जंगली' कहानी में लच्छू और उसकी मां करते हैं। यहां हमें देखने को मिलता है कि आदिवासी स्त्रियां अपने पति पर निर्भर नहीं रहती हैं वह घर से बाहर निकल कर जिस जल-जंगल-जमीन की बात की जाती है उसी की ओर अग्रसर रहती हैं। 'देहरी की खातिर' कहानी में जब पिताजी लड़की को घर से निकाल देते हैं, तब गांव की काकी उसे अपने घर में पनाह देती है, क्योंकि वह मां बनने वाली थी। काका-काकी उसे बहुत स्नेह दुलार के साथ अपने घर में स्थान देते हैं। बच्चे के जन्म के पश्चात काकी ही उसके और उसके बच्चे का ख्याल रखती है लेकिन काका की नियत में खोट आ जाता है जिस प्रकार एक पुरुष प्रधान समाज एक स्त्री का शोषण करने में संकोच नहीं करता उसी प्रकार काका जब शोषण करना चाहता है तो काकी सही समय पर बेटी को बचा लेती है। एक नारी की अस्मिता को बचाए रखने के लिए काकी अपने पति का टांगिया से मारकर हत्या कर देती है। यहां देख सकते हैं कि स्त्री अपनी अस्मिता अपने आत्म सम्मान को बचाए रखने के लिए किसी पुरुष के अधीन नहीं है।

रचनाकर कोमल द्वारा रचित 'पहचान' कहानी में आदिवासी जनजाति का हृदय विदारक दर्द पाठकों के समक्ष दिखाई पड़ता है। कहानी के प्रारंभ में मुखिया सिंह जी के पास एक आदिवासी युवती जाति प्रमाण पत्र बनवाने हेतु आवेदन लेकर आती है। मुखिया उसके शरीर को निहारती हुई उससे नाम पूछता है वह कहती है कि मेरा नाम सोनिया टोप्पो है। उसके पश्चात मुखिया कहता है कि तुम पढ़ाई करती हो तब सोनिया कहती है कि मैं इंटर में पढ़ती हूं। तब अचानक मुखिया घूर कर कहता है तुम तो आदिवासी नहीं लगती और तुम्हारा नाम भी आदिवासी जैसा नहीं लगता? उनके नाम तो एतवारी, सुरजी आधी हुआ करते हैं।" संजीव द्वारा लिखित 'अपराध' कहानी जो नक्सलवादी आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। 'अपराध' कहानी के नायक सचिन (बुलबुल) को जब सजा दी जाती है तो उससे बचाव के लिए बोलने को कहा जाता है तब वह कहता है मुझे इस पूंजीवादी

प्रतिक्रियावादी न्याय व्यवस्था में विश्वास नहीं है। आम जनता भी जिसे न्याय का मंदिर कहती है भालू तेरे पंजे और जूता चोरों से भरा पड़ा है। ... यह लाल थानी लाल जेलखानी और लाल कचहरिया इन पर कितने बेकसूरों का खून होता है। वकीलों और जजों का काला गाउन न जाने कितने खून के धब्बों को छुपाए हुए हैं। परिवर्तन की महान रास्ते में एक मुकाम भी आएगा जिस दिन इन्हें अपना चरित्र बदलना होगा वरना इनकी बुलंदियाँ धूल चाटती नजर आएंगे।" कहानी में बताया है कि सत्ता व्यवस्था और समाज की तमाम विरोधियों को संघर्ष विरोध के माध्यम से हराया जा सकता है जिसके लिए क्यों ना समानांतर सत्ता और व्यवस्था की स्थापना करनी पड़े संजीव मानते हैं कि आदिवासी किसान मजदूर वर्ग नारी द्वारा सामंतवाद की बात की फैलते वर्चस्व ही हिंसात्मक विद्रोह और संघर्ष ही नक्सलवादी आंदोलन है।

इसी प्रकार संजीव की 'चाकरी' कहानी में हम एक आदिवासी नवयुवक के दर्द को देख पाते हैं। वह लड़का अपने ही लोगों द्वारा शोषण एवं उत्पीड़न का शिकार होता है और उसे भी स्थापित कर दिया जाता है। गांव के सरपंच रघुवीर सहाय उसके जमीन को हड़प लेता है और उसे चमार एवं सूअर के नाम से नामित कर उसे खदेड़ने में अहम भूमिका निभाता है। परंतु लड़का अपने सभी परिस्थितियों से लड़कर जीवन से संघर्ष कर एस. एस. सी की परीक्षा में पास होता जाता है। आश्चर्य की बात यह सामने आती है कि जहां नौकरी करता है उसे पर्सनल मैनेजर की बेटी का ट्विटर बनना पड़ता है और वह कहता भी है कि "एंप्लॉयमेंट एक्सचेंज से भर्ती करने अफसरों और लड़कों की बिल्डिंग बनती देखी है मैं यह सब देखता रहता हूं और टूटता रहता हूँ, टूटता रहा हूं और देखता रहा हूं।" इसके अलावा रांगेय राघब की 'गदल' कहानी, मनीष राय की 'शिलान्यास', हरिहर वैष्णव की 'फैसला' कहानी भी हमारे सामने आतीं हैं।

निष्कर्ष:-

अस्मिता मूलक विमर्श के अंतर्गत आदिवासी विमर्श एक प्रभावी विमर्श है। हिंदी कहानी साहित्य को देखकर इस निष्कर्ष पर उत्पन्न होते हैं कि आदिवासी समुदाय अपने जल जंगल जमीन में से पुन: जुड़ा होता है वह अपने वृक्षों को जल को देवता के रूप में देखता है क्योंकि उनसे सभी व्यक्तियों के मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती है परंतु हमारा यह सभ्य समाज आज भी उनको पिछड़ा हुआ मानता है संविधानिक रूप से उनको अंतिम पंक्ति से अग्रिम पंक्ति तक लाने का जो आता है उसमें हिंदी का कथा साहित्य सृजन कर रहा है।

आदिवासी साहित्य की कोई केंद्रीय विधा नहीं है, जिस तरह स्त्री एवं दलित साहित्य की आत्मकथा लेखन में देखने को मिलता है आदि वैसे ही हमें आदिवासी के नहीं मिलते। आदिवासी कलम की धार तेजी से अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर रही है धीरे-धीरे कविताएं, कहानियां, उपन्यास आदि के माध्यम से भले ही वह एक आदिवासी क्षेत्र से आ रहे रचनाकार हो या आदिवासी समाज में जीवन निर्वाह कर रहे समाजों में अपनी लेखनी के धार के माध्यम से आदिवासियों के समस्त विशेषताओं को कर्म-कुशलताओं को चित्रित करने का भरसक प्रयास कर रही है। आजादी से पहले आदिवासियों की मूल समस्या वनोपज पर प्रतिबंध तरह-तरह के लगाएं महाजनी शोषण, पुलिस प्रशासन की सजातियां आती रही जबकि आजादी के बाद भारतीय सरकार द्वारा बनाए गए विविध नियमों के माध्यम से उनके जल, जंगल,जमीन का अधिकार छिनता चला गया इस प्रक्रिया में एक और उनकी सांस्कृतिक पहचान उनसे छूटती ही गई दूसरी ओर अस्तित्व की रक्षा कर पाना उनके लिए असंभव सा लगा। यहां आदिवासियों को अपने सभी अधिकारों को अंतिम पंक्ति से अग्रिम पंक्ति तक लाने का सफर और एक सामुदायिक भावना से जीवन निर्वाह कर रहे मनुष्य का चित्रण सफल रुप से एक साहित्यकार को अपने साहित्य में करने की आवश्यकता है तभी वहां एक आदिवासी की विमर्श की बात सामने ला पाएंगे। जब एक लेखक की अस्मितामूलक विमर्श पर अच्छे विचार सामने आएंगी तो वह समाज को सभ्य एवं सुसंगठित करने में सहायक साबित होगा।

****

संदर्भ ग्रंथ -

1. संजीव, संजीव की कथा यात्रा: दूसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
2. परवेज, मेहरुन्निसा (2006). मेरी वस्तर की कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
3. सं. रमणीक गुप्ता, हरिराम मीणा का साक्षात्कार, युद्धरत आम आदमी, अंक 13, नव. 2014
4. टेटे, वंदना(2013).आदिवासी साहित्य: परंपरा और प्रयोजन, प्रथम संस्करण, केरकेट्टा फाउंडेशन रांची
5. टेटे, वंदना. आदिवासी दर्शन और साहित्य
6. यादव, चौथी राम(2014). उत्तर शती के विमर्श औरहासिए का समाज, नयी दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर

प्रेमचंद के कथा साहित्य में नारी समस्या

डॉ. दीपा अंटिन
कर्नाटक- बेलगावी

प्रेमचंद युग के कथाकारों ने कथा साहित्य में स्त्री के चरित्र-चित्रण में त्याग,सेवा और बलिदान को महत्वपूर्ण स्थान दिया,लेकिन फिर भी वे स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता को अधिक मूल्य नहीं देते दिखते हैं।प्रेमचंद 1905 ई.से1936 ई. तक के रचनाकारों की रचनाओं में किसान जड, दरिद्रता ग्रस्त, उत्पीड़ित और अपने दुर्भाग्य पर रोनेवाला था।एक ओर तो जमींदारी प्रथा के विरुद्ध गाँव मे पुराना और निरंतर बढ़ने वाला असंतोष था,जो22-1920 के राष्ट्रीय आंदोलन में गहराया था।दूसरी ओर मजदूर वर्ग का उत्थान, तीसरी ओर स्त्री की दशा,जिसको प्रेमचंद अपनी रचनाओं में पर्याप्त स्थान देते हैं।

प्रेमचंद जहाँ एक ओर समाज मे परिवर्तन की बात करते हैं,वही दूसरी ओर स्त्री की निजी चारित्रिक विशेषताओं पर भी ध्यान देते हैं।प्रेमचंद अपने उपन्यास" सेवा सदन"(1918)में स्त्री की समस्या को धृतक पर उभारा है।इसमें उन्होंने वेश्या जीवन के साथ समाज की रूढ़िवादिता, दहेजप्रथा, पारिवारिक कलह,स्त्री शिक्षा,अनमेल विवाह तथा उससे उत्पन्न विकृत स्थिति को समाज के सामने लाया।"सेवासदन"की एक पात्र सुमन एक रुपवती, गुण शीलता और पढ़ी लिखी लड़की है,जिसका विवाह कर दिया जाता है एक बदमिजाज और अनमेल पुरुष से।जहाँ एक अबला टूटकर बिखरजाति है,उसे पतित होकर जीना पड़ता है।सुमन चाहती है कि भोलीबाई उसके लिए एक किराय पर मकान का बंदोबस्त कर दे जिसमे रहकर वह शेष जीवन का निर्वाह कर सके।लेकिन उसे यह पता नहीं कि भारतीय समाज मे एक अबला अकेली मनचला पुरुष जाती से कब तक बच सकती है।शायद इसीलिए वह भोलीबाई की सहायता से नाचना-गाना सीखना चाहती है।सिर्फ इतना फर्क है कि वह वेश्या के कोठे पर बैठती है।जिस कारण समाज उसे सुमन बाई के नाम से जानती है।वेश्यावृत्ति के आधार तो यह माना गया है कि स्त्री सुख और धनोपार्जन केलिए अपने तन को मर्दो के बिस्तर तक ले जाती है।सुमन ने ऐसा नहीं किया, फिर भी पदमसिंह शर्मा और विट्ठलदास को इतनी ही चिंता होती है?अगर सुमन निम्न वर्ग की होती तो वेश्या बनकर कोठे में बैठ जाती फिर भी समाज के ठेकेदारों को इतनी ही चिंता होती है।कथानक में सुमन को एक ब्रह्मणी के रूप में प्रस्तुत करके समाज सेवियों पर गहरी चोट की है। सुमन सीधी-साधी स्त्री है साथ ही वह स्त्री एक वेश्या के कोठे को अपने जीवन यापन केलिए चुना है।यह शोचनीय विषय है सुमन सवर्ण यानी ब्राह्मण परिवार की लड़की है और इसने छोटी जाती की कुलटाओं जैसा काम किया है।इस स्थिति में सेवासदन में वेश्याओ को लेकर जो भी सुधारात्मक कार्य किया गया,उनके मूल में ब्राह्मणवाद है न कि वेश्या समस्या।

प्रेमचंद की और एक उपन्यास" गबन"की रचना करते समय मध्यवर्गीय जीवन के अंतर्विरोधों की ओर ही नहीं राष्ट्रीय सांस्कृतिक संकट,जो गुलामी की जंजीर में जकड़ी तथा स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान था।प्रेमचंद भारतीय ग्रामीण स्त्रीयों में आभूषणों के प्रति उसकी उत्कट चाह को भी उसकी असुरक्षा की भावना से जोड़ते हैं लेकिन वह अशिक्षित है,आर्थिक स्थिति भी कमजोर है।प्रेमचंद रतन के द्वारा भारतीय स्त्री की दशा को स्पष्ट करते हैं।रतन उच्च मध्यवर्गीय की स्त्री है उसके पास कोठी गाड़ी और तमाम सुख सुविधा उसके पति के कारण है।लेकिन उसके पति के मरते ही उसके पैरों के नीचे से धरती ही खिसक जाती है।रतन की पति रमानाथ के परिवार के लोग उसकी सारी संपत्ति पर अधिकार जमाकर उसे सड़क पर खड़ा कर देते हैं।अधिकारहीन स्त्री के प्रति प्रेमचंद पर्याप्त दयावान है और उन्होंने उसकी इस समस्या को बड़े गंभीर रूप में ग्रहण किया है। प्रेमचंद अपने और एक उत्कृष्ट उपन्यास"निर्मला"में भी स्त्री दशा को अनमेल विवाह,दहेज प्रथा के साथ-साथ प्रेम की विफलता को दिखाते हैं।जिसमे स्त्री जीवन की समस्या सामाजिक समस्या के रूप में व्यक्ति के सामने है।सैक्स के संबंध में तो भारतीय समाज अभी भी कुंठित है,जिसकी मान्यताओं को तोड़ पाना इस समाज केलिए असंभव है।इसमें यौन-दमन और यौन-शोषण भी बड़े आकार में है।इसलिए प्रेमचंद ने विवाह को एक मुख्य भारतीय समस्या के रूप में उठाया।क्योंकि इसमें आर्थिक और यौन संकट का संबंध अधिक स्पष्ट है।प्रेमचंद निर्मला की ओर से कहते हैं कि अनमेल विवाह कोई व्यक्तित्व समस्या नहीं है वरन एक सामाजिक रोग है,जिसका स्थायी उपचार होना चाहिए।यहाँ प्रेमचंद अपने कथानक में कहते हैं कि वैवाहिक समस्या का हल बिना समाज के विचार और आर्थिक स्थिति के बदले नहीं हो सकती।निर्मला उपन्यास में आखिर निर्मला की शादी एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति तोताराम से कर दी जाती है फिर भी निर्मला भारतीय स्त्री के अनुसार पति कर्तव्य करती है पर उसकी मानसिक स्थिति अत्यंत दयनीय है।वह अपने जीवन के तमाम संकट से समझौता करती है।निर्मला की दशा सम्पूर्ण भारतीय समाज की स्त्री की दशा की ओर संकेत है तभी तो निर्मला अपनी वेदना, घुटन के कड़वे घूँट पीकर भी,अतृप्त कामनाओं को हमेशा केलिए दबाकर रखती है और यही कारण है कि अपने स्वतंत्र भावनाओं को नहीं दिखा पाती।निर्मला अपने पति के साथ पतिव्रता का धर्म निभाना चाहती है लेकिन उसके पति उसे शंकाल की नजर से देखकर निर्मला को पति से घृणा केलिए बाध्य करता है फिर पतिव्रता के कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर वह अपने पति का संदेह दूर करने केलिए प्राणों की बाजी लगा देती है।किंतु समाज उनको कोई मूल्य नहीं देता।ऐसी स्थिति में निर्मला के जीवन में जो भी वैषम्य आता है उसको नारी- मन के पारखी प्रेमचंद ने बड़े सशक्त रूप से व्यक्त किया है।कर्तव्य की वेदी पर उसने अपना जीवन और अपनी सारी कामनाएं होम कर दी थी।

निष्कर्ष:-

कुल मिलाकर प्रेमचंदजी की कथा साहित्य में नारी का जीवन अग्निपरीक्षा केलिए ही बना है यह स्पष्ट होते हुए दिखाई पड़ता है।प्रेमचंद युग मे स्त्री की दशा को संवारने केलिए किसीने कलम उठाया तो वह है प्रेमचंद।उन्होंने स्त्री की भावना को,उसके सुख-दुख को,उसकी दमन प्रवृत्तियों को,उसकी वासनावों को समाज के सामने रखा।इन्होंने पतिज्ञा में विधवा समस्या व वनिता आश्रम की स्थापना, सेवासदन में वेश्यावृत्ति के मूल कारणों को,निर्मला में अनमेल विवाह के साथ-साथ,गोदान में होरी और धनिया के जीवन की दुखांत गाथा को सफलता पूर्वक चित्रित किया है।प्रेमचंद अपनी कहानियों के जरिए भी स्त्री के माँ, बहन,प्रेमिका और पत्नी आदि के रूपों का चित्रण सहज भाव से करते हैं क्योंकि उनकी निगाह में स्त्री कभी हीन नहीं रही।

****

संदर्भ ग्रंथ:

1.नारी चिंतन एक मूल्यांकन लेखक:डॉ शंकर तेरदाल
2.इंटरनेट।

दया प्रकाश सिन्हा के नाटकों में चित्रित-संवेदना

वैशाली काशिनाथ गायकवाड
शोधार्थी,हिंदी विभाग
डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय
औरंगाबाद.मो.नं. 9029920423

दया प्रकाश सिन्हा हिंदी साहित्य में वरिष्ठ नाटककार के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने एक दर्जन से भी अधिक नाटकों की रचना की हैं। वे एक नाटककार के साथ एक निर्देशक और कुशल अभिनेता भी हैं । उनके सभी नाटकों का रंगमंच पर सफल मंचन हुआ हैं । दया प्रकाश सिन्हा जी ने अपने जीवन के अनुभवों और अनुभूतियों को अपने साहित्य के द्वारा अभिव्यक्त किया हैं ।वे कहते हैं की, "मैंने नाटक कभी फैशन के लिए नहीं लिखा । मैं जो हूँ, जो मेरा परिवेश है, जो मेरे अनुभव सीमा से आबध्द हैं, उसी को नितांत ईमानदारी से नाटकीय, मुहावरों में उतारने का प्रयत्न किया है । मेरा जन्म गाँव में नहीं हुआ, और न मैं गाँव में पला-बढ़ा। इसलिए मैंने 'गोबर' जैसे किसी पात्र को गढ़ने का प्रयत्न नहीं किया, 'गोदान' जैसी कोई रचना की । बिना 'लमही' के कोई प्रेमचंद नहीं बन सकता । कोशिश करके भी कोई रेणु नहीं बन सकता । मैंने सदैव अपनी सीमा को जाना है ।"[१] उन्होंने अपने परिवेश और व्यक्तिगत जीवन से मिले अनुभवों को ही नाटकों के द्वारा अभिव्यक्त किया हैं ।

'कथा एक कंस की' पौराणिक नाटक है । उन्होंने यह नाटक सन १९७४ में लिखा है । कंस को खलनायक माना जाता हैं । किन्तु उसके कंस बनने के पीछे क्या कारण है, या ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ थी जिसके कारण एक साधारण मनुष्य कंस बन गया है ।इन कारणों को सिन्हा जी ने प्रस्तुत किया हैं । यह नाटक सिर्फ कंस पर केंद्रित नहीं है बल्कि इतिहास काल में जिन व्यक्तियों ने जनता पर शासन करते हुए उनका शोषण किया उन पर केंद्रित हैं । कंस की तरह स्वेच्छाचारी शासन करने वाला अकबर या हिटलर जैसे व्यक्ति जो अपने आत्मसत्ता का विस्तार करने के लिए अपनी आकांक्षा से पीड़ित ऐसे मार्ग पर चलते है जहाँ से वापस लौटना उनके लिए मुश्किल हो जाता हैं । स्वयं सिन्हा जी कहते है की, "इस नाटक के द्वारा मैंने एक स्वेच्छाचारी शासक के उत्थान -पतन के अतिरिक्त उसकी महत्वाकांक्षा में निहित त्रासदी को पकड़ने की भी चेष्टा की है। यही नाटक की मूल संवेदना है ।"[२]

कंस जो की अब महाराज बन गया है । जिसने अपने ही पिता को काराग्रह में डाल दिया है । वह स्वयं अपनी स्मृतियों को याद करते हुए स्वयं से पूछता है की, "कहाँ से प्रारंभ होती है यह कथा ? एक साधारण मनुष्य की असाधारण महत्वाकांक्षा की कथा । एक साधारण मनुष्य के भगवान बनने की कथा । एक धडकते हृदय के तपते लहू के ठंडे होकर धीरे-धीरे पत्थर की तरह जमने की कथा । तिल-तिल कर, क्षण-क्षण मरने की कथा । जीवित ही मृत्यु-वरन की कथा ।"[३] कंस अपने भूतकाल में घटित उन घटनाओं को याद करता है जिसके आघात से वह कभी उभर नहीं सका जिसके परिणाम स्वरूप वह एक स्वेच्छाचारी शासक बन गया है । "हम जन्म से ही कुछ ऐसे हैं । हम सदा से सपने देखते हैं, उस संसार के जिसमें बर्बरता नहीं होगी । सब समान होंगे, मनुष्य में मनुष्य के लिए करुणा होगी, ममता होगी, मेरी एकांत-संगिनी वीणा का संगीत होगा। सुगंध और फूल होंगे ।"[४] कोई भी व्यक्ति जन्म से ही दानव नहीं होता है। उसके जीवन में कुछ ऐसे अनुभव उसे मिलते है जिससे वह गलत मार्ग पर आगे बढ़ने लगता है। कंस भी एक साधारण व्यक्ति के समान संवेदनशील व्यक्ति था, उसके भी मन में करुणा का भाव था, लेकिन उसके जीवन की ऐसी स्मृतियाँ है, जिसे वह कभी नहीं भूला सका। पहला प्रंसग है- कंस के पिता उग्रसेन के मनोरंजन के लिए राजपुरुषों का जमाव बैठा था । वहाँ एक निरीह बकरा रखा गया था । जो महाबली, महापराक्रमी यादवों के मनोरंजन का एक साधन था । उग्रसेन के आज्ञा देने पर वासुदेव ने उस बकरा के दायीं आखं पर तीर मारकर धनुर्विद्या में निपुणता प्रदर्शित किया, उसके बाद उग्रसेन ने कंस को बकरी की बायीं आखं पर निशाना लगाने के लिए कहाँ, किंतु बकरा की पीड़ा देखकर कंस ने तीर चलाने से इनकार कर दिया, तब उग्रसेन क्रोधित होकर कहते है "हम यह जानते थे – (महाराज के स्वर में जैसे तिरस्कार और घृणा की बाढ़ थी) तुम हाथों में स्त्रियों के कंकण पहनकर वीणा बजाओ। ये पुरुषों के खेल तुम्हारे- जैसे स्त्रैण पुरुष के बूते के नहीं । अपमान, लांघन, तिरस्कार, उपहास- (सहसा क्रोध से) मुर्ख, बर्बर, पशु" [५] राजदरबारों में उपस्थित सभी लोगों के सामने उग्रसेन अपने पुत्र कंस को अपमानित करते है। जिससे उनके हृदय में आघात पहुँचता है । बकरी का दर्द देखकर कंस ने पीड़ा ही महसूस की थी, उसकी वह पीड़ा देखकर वह उसे और पीड़ित नहीं करना चाहता था, कंस संगीत प्रेमी था । उसे वीणा बजाना अधिक पंसद था । शस्त्र चलाना उसे नापंसद था, उग्रसेन कंस को पूछते है की तुम्हें कौनसा हथियार सबसे अधिक प्रिय है ? कंस उत्तर में कहता है वीणा, उस पर वे क्रोधित होकर उसे 'स्त्री वेष में पुरुष' कहते हुए तिरस्कृत करते है । कंस स्वाती से कहता है की, "पुरुष वही है जो हत्या करे, रक्तपात में हर्षित हो, हिंसा की हुंकार में जीवन-संगीत ढूंढे, निर्मम, क्रूर, बर्बर, अँधा, बहरा- ऐसा होता है पुरुष,(व्याकुलता से) हम ऐसे पुरुष क्यों नहीं हैं ? क्यों हमसे दूसरों का दःख नहीं देखा जाता? क्यों हम दूसरों को कष्ट में देखकर करुणा से भर जाते हैं ? क्यों दूसरों की पीड़ा देखकर हमारी आँखों में आँसू आ जाते हैं ? क्यों हैं हम ऐसे दुर्बल ?[६] कंस जब पांच-छह वर्ष का था उस समय उग्रसेन ने उसे कभी डरपोक कहते हुए, कभी भरी सभा में अपनी कटु वाणी से अपमानित करते हुए बार-बार कंस के बाल मन को कई बार प्रताड़ित किया हैं। जिसके परिणाम स्वरूप कंस एक सामान्य व्यक्ति से असामान्य व्यक्ति बनने के लिए मजबूर हो जाता हैं । उसके कंस बनने का कारण उसने अपने व्यक्तिगत जीवन में पिता से मिले हुए अपमान, तिरस्कार का विद्रोह हैं । 'इतिहास-चक्र' ऐतिहासिक कथानक पर आधारित एक युध्द-विरोधी नाटक है । नाटक के द्वारा सिन्हा जी ने तानाशाही राज में एक शासनकर्ता अपने स्वार्थलोलुपता के कारण किस प्रकार गरीब जनता का शोषण करता हैं । उनका उपयोग अपनी सत्ता बचाने के लिए करता है, उन्हें बड़े-बड़े आश्वासन देता है परंतु सत्ता मिलने पर उन्हीं का शोषण करता है, इस विंडबना को सिन्हा जी ने व्यक्त किया है। देश में अनामी जैसे गरीब लोगों की स्थिति हमेशा से दयनीय रही हैं, उन्हें दो वक्त की रोटी भी नहीं मिलती । इन सारी परिस्थितीयों का जिम्मेदार वह व्यक्ति है जो स्वयं को तानाशाह घोषित करके सत्ता की आड़ में अपना बैकबैलेंस बढ़ा रहा है और दूसरी ओर जनता का शोषण कर रहा हैं। उसके कारण देश में भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, कालाबाजार, रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी, मंहगाई आदि से जनता परेशान होकर भूखा मर रही हैं, जनता की ये समस्याएँ आज भी समाज में दिखाई देती हैं, इसलिए यह नाटक आज भी प्रासंगिक है ।

"सूत्रधार : (अनामी के पास जाकर) तुम तो बीमार हो ?
अनामी : दो महीने से तबियत खराब है बाबू , हल्के-हल्के खांसी आती थी, अब तो बेदम कर देती है ।

सूत्रधार : इसका इलाज क्यो नहीं करते ?
अनामी : इलाज ? **सूत्रधार :** हाँ..
अनामी : बाजार में तो जैसे आग लग गयी है, हर चीज बाबा मोल हैं , ऐसे में पहले पेट भरें कि इलाज करें ? (खांसी का दौरा) पेट भी कहां भर पाता है।
सूत्रधार : इसकी बात समझ में नहीं आती, जिस गति से कुबेर अपना उद्योग साम्राज्य बढ़ा रहा है, जिस गति से राजा का स्विट्जरलैंड में बैंक बैलेंस बढ़ रहा है, जिस तरह छोटे बाबू के घर में बड़ा रेफ्रिजरेटर, टीवी कार, एसी, आ रहे हैं, उससे तो यही लगता है कि पश्चिम में दूध और घी की नदियाँ बह रही हैं। फिर इसे दो वक्त का खाना नहीं जुट पाता ? इसकी बात समझ में नहीं आती !" ७ देश की सत्ता पर आसीन सत्ताधारी व्यक्ति सिर्फ अपने स्वार्थ के बारे में ही सोचता हैं, वे और उनसे जुड़े हुए लोग सभी सुख-सुविधाओं से युक्त जीवन बिताते हैं, परंतु गरीब जनता महंगाई, बीमारी, रिश्वतखोरी, बेईमानी से परेशान है। जनता के कल्याण के लिए वे सत्ताधारी बने है, परंतु उनकी सहायता करने के बजाय उनकी परेशानियों के कारण बने हुए हैं, "हम राजा है। हम तुम्हें जानते है, तुम जनता हो, तुम्हारे कारोड़ों मुँह और करोड़ों हाथ हैं, लेकिन पेट खाली है। तुम्हारे पास धूल है, धूप है, गंदगी है, नंगदी है, बीमारी है, मौत है। (अनामी पर एक पैर रख कर) हम इन सबके सामने, हम पश्चिमी देश के राजा वादा करते हैं कि तुम को रोटी देंगे, कपड़ा देंगे, फुल देंगे, सुगंध देंगे, (अनुनय से) तुम मुझे सिर्फ एक चीज दे दो, सिर्फ एक चीज।" [८] इतना सब कुछ जानने के बाद भी जनता की आर्थिक स्थिति सुधारने के बजाय सताधारी लोग अपनी सत्ता बचाने के लिए उनसे सहाय्यता की अपेक्षा करता है।

'मेरे भाई मेरे दोस्त' हिंदू-मुस्लिम एकता और भारत-पाकिस्तान द्वंद्व के उलझे प्रश्नों से टकराता आज का साहित्यिक नाटक है. इस नाटक के माध्यम से हिंदु और मुस्लिम धर्मों के बीच एकता, अपनापन, विश्वास दिखाई देता हैं। भारत में हिंदू और मुस्लिम लोग एक हजार वर्षो से साथ-साथ रह रहे हैं, इन दोनों सप्रदायों को साथ-साथ ही रहना है। इसलिए दोनों सम्प्रदायों के बीच पारस्परिक सम्मान और स्नेह होना जरुरी हैं, परंतु पाकिस्तान हिन्दुस्तान को हमेशा से अपना दुश्मन समझता है। वह वहाँ के लोगों के हृदय में भारत के प्रति जहर घोलता आ रहा है। भारत में हिंदू-मुस्लिम के बीच दरार डालते हुए उनके बीच झगड़ा लगाना चाहता हैं। सांप्रदायिक दंगे-फसाद करने के उद्देश्य से यासीन भारत में आता है, यासीन के पिता अनवर और डॉ. मिर्जा बचपन के दोस्त हैं, भारत- पाक की लढाई में यासीन के पिता ने देश की रक्षा करते हुए अपने प्राण त्याग दिए थे ।
"किशन : यह तो बहुत पहले ही करना चाहिए था, अपने देश के लिए हँसते-हँसते सीने पर गोली झेल ले, वह मामूली आदमी नहीं होता , कचहरी में तुम्हारे अब्बा जिस जगह गोली खाकर गिरे थे, वहीं हम लोगों ने आजादी मिलते ही तुम्हारे अब्बा की मूर्ति लगवाई थी।"[९] जब देश का विभाजन हुआ तब कई परिवार भारत देश को छोड़कर पाकिस्तान में जा बसे थे। यासीन भी अपनी चार साल की आयु में अपनी खाला के साथ पाकिस्तान में जा बसा था। अब वह वापस भारत आया है अपने पिता के मित्र मिर्जा के घर जहाँ वह यह देखता है की किशन और मिर्ज़ा दोनों के बीच पारिवारिक संबंध है। जब की उसने यह सुना था की भारत में हिंदू लोग मुस्लिम समुदाय पर अत्याचार करते रहते हैं।
"किशन : यासीन बेटे, जैसे डाक्टर भाई का घर तुम्हारा घर है, वैसे मेरा घर भी तुम्हारा घर है।
मिर्ज़ा : हम लोगों के घर के बीच दीवार एक है।
किशन : लेकिन दिलों के बीच दीवार नहीं है।
मिर्ज़ा : हम लोग सौ-डेढ़ सौ साल के पड़ोसी हैं।
किशन : पड़ोसी नहीं एक घर है।
मिर्ज़ा : किशनलाल मेरे सगे भाई की तरह हैं।
किशन : भाई की तरह नहीं, उससे भी बढ़कर हैं, (दोनों एक साथ हँसते हैं)"[१०] देश के प्रति प्रेम का भाव तथा सम्मान का भाव हर एक व्यक्ति में होता हैं। पाकिस्तान हमेशा से देश का दुश्मन ही रहा है, वहाँ रहने वाले लोगों के हृदय में भारतवासियों के प्रति दुश्मनी का भाव रहा हैं। ऐसे में यासीन भी जब भारत आता है तो वह देश में दंगे फसाद करने के उद्देश्य से ही आता है। किंतु सच्चाई को जानकर वह अपने आप को पुलिस के हवाले कर देता है।
'सम्राट अशोक' एक ऐतिहासिक नाटक है, इसका प्रकाशन सन २०१५ में हुआ है। यह अशोक को केंद्र में रखकर लिखा गया नाटक है , अशोक जो राजा बनने के लिए अपने ही पिता के हत्या का कारण बना है। जिसने राज सिंहासन के लिए अपने भाई सुसीम के साथ चार साल तक युध्द करके उसकी हत्या कर दी और स्वयं राज सिंहासन पर आसीन हो गया, जब की वह स्थान उसके भाई सुसीम का था। अशोक ने कई युध्द किए, कई हत्याएँ की है, परंतु जब वह धम्म की शरण में आया तब उसका हृदय परिवर्तित होकर उसमें धम्म के प्रति आस्था, मनुष्यों के प्रति प्रेम, दया, पशुओं के प्रति करुणा, आदि संवेदनाएँ जागृत हो जाती हैं। "देवानामप्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहते हैं : संसार में कोई उपहार धर्म- उपहार से बढ़कर नहीं है। कोई दान धर्मदान जैसा नहीं है। कोई मित्र धर्ममित्र जैसा नहीं हैं। कोई भी संबंध धर्म-संबंध जैसा नहीं है।"[११] अपने शिलालेखों के माध्यम से धर्म की परिभाषा बताते हुए संसार में शांति बनाए रखना चाहता है। जहाँ भोजन के लिए पशुओं की हत्या की जाती थी किंतु धम्म के कारण वे पशु हत्या ना करने का निश्चय करते है। "लिखो शब्दकार -पहले देवानामप्रिय राजा प्रियदर्शी की राज-रसोई में सहस्त्रों पशुओं का वध भोजन के लिए किया जाता था। अब इस धर्माज्ञा के लिखे जाते समय प्रत्येक दिन केवल दो मोर और एक हिरन भोजन के लिए वध किये जाते हैं। कालांतर में इन तीन पशुओं का भी वध राज-रसोई के लिए नहीं किया जायेगा। "[१२] जो अशोक हत्यापात करता था, लोगों को मृत्युदंड देता था, वही अशोक धम्माशोक बनने पर करुणावान बनते दिखाई देता है।
निष्कर्ष:- के रूप में हम कह सकते हैं कि दया प्रकाश सिन्हा के नाटकों में संवेदना के विविध आयाम पाए जाते हैं। कंस और अशोक दोनों के हृदय में मनुष्य, पशु, प्राणियों, वृक्षों के प्रति सहानुभूति एवं पीड़ा का भाव दिखाई देता हैं। इतिहास चक्र नाटक में आर्थिक, सामाजिक, राजनितिक संवेदना दिखाई देती हैं। मेरे भाई मेरे दोस्त नाटक के माध्यम से राष्ट्रीय संवेदनाएँ दिखाई देती है, सिन्हा जी के नाटकों में विविध संवेदनाएँ दिखाई देते है।

****

संदर्भ सूची

१.सिन्हा दया प्रकाश, सीढियाँ, प्रकाशन वर्ष २००८, पृ.क्र.११-१२
२.सिन्हा दया प्रकाश, कथा एक कंस की, प्रकाशन वर्ष २००८, पृ.क्र.१२-१३
३.वही, वही, पृ.क्र.३७
४.वही, वही, पृ.क्र.३९
५.वही, वही, पृ.क्र.४०
६.वही, वही, पृ.क्र.३९
७.सिन्हा दया प्रकाश, इतिहास-चक्र, प्रकाशन वर्ष १९७३, पृ.क्र.३९-४०
८.वही, वही, पृ.क्र.४७
९.दया प्रकाश सिन्हा, मेरे भाई मेरे दोस्त, प्रकाशन वर्ष २०१५, पृ.क्र.३९
१०.वही, वही, पृ.क्र.४०
११.सिन्हा दया प्रकाश, सम्राट अशोक, प्रकाशन वर्ष २०१५, पृ.क्र.६७-६८
१२.वही, वहीं, पृ. क्र.६९

हमारा शहर उस बरस में साम्प्रदायिकता

डॉ.संतोष रोडे
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
प्रा. रामकृष्ण मोरे महाविद्यालय आकुर्डी ,पुणे

समकालीन महिला रचनाकरों में गीतांजलि श्री पुरे विश्व में प्रसिद्धी प्राप्त की हैं वह हिंदी की जानी मानी रचनाकार हैं गीतांजलि श्री हिंदी की पहली ऐसी लेखिका हैं जिन्हें रेत समाधी के लिए मैंन बुकर अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार से समानित किया गया हैं | उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जनपद में जन्मी गीतांजलि श्री की प्रारम्भिक शिक्षा उत्तर प्रदेश के विभिन्न शहरों में हुई उन्होंने स्नातक दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज से पूरी की और जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए .की पढाई की | अनुसंधान के बाद कुछ दिनों तक दिल्ली के जामिया मिलिया विश्वविद्यालय अध्यापन कार्य किया | उनके रचना संसार में पांच उपन्यास हैं माई ,हमारा शहर उस बरस ,तिरोहित, खाली जगह, रेत समाधी आदि उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं और पांच कहानी संग्रह हैं अनुगूँज ,वैराग्य ,मार्च ,माँ और साकूरा,यहाँ हाथी रहते थे , और प्रतिनिधि कहानियाँ प्रकाशित हैं |

अपने लेखन में वैचारिक रूप से स्पष्ट और प्रौढ़ अभिव्यक्ति के जरिए उन्होंने अपना हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान बनाया हैं | हमारा शहर उस बरस गीतांजलि श्री का रचना विकास की दृष्टि से यह दूसरा उपन्यास हैं जो साम्प्रदायिक समस्या को मुख्य रूप से उद्घाटित करता हैं उपन्यास में उस बरस का संबध हैं जब 6 दिसम्बर 1992 में बाबरी मस्जिद का ध्वंस हुआ था |हमारा शहर कोई भी हो सकता हैं | उपन्यास में साम्प्रदायिकता को लेकर लम्बीं बहस शुरू होती हैं लेकिन किसी निष्कर्ष तक पहुचते नहीं सिर्फ चर्चा विमर्श करते है| यह उपन्यास राजनितिक मसले को लेकर लिखा गया महत्वाकांक्षी उपन्यास हैं उपन्यास में सबसे महत्वपूर्ण उन बुद्धिजीवियों का चरित्र हैं ,जिनके मन में पेंचे तथा गांठे हैं लेखिका ने उन्हें बड़े अछे तरीके से खोला हैं | समाज में ऐसें भी लोग हैं जो साम्प्रदायिक दंगे के यथार्थ को समझते हैं ,उन पर बहस करते हैं मगर जब भी साम्प्रदायिक दंगे फसाद होते है तब चाहे अनचाहे वो भी हिन्दू मुसलमान होते हैं

हमारा शहर उस बरस में बहुत कम पत्र हैं जिनमे शरद श्रुति हनीफ एवं ददु हैं पूरा उपन्यास दो स्तरों पर चलता हैं एक तो विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में शरद और हनीफ अध्यापन करते है दूसरी ओर जहा तीनों अपनी तरह से वर्तमान की व्याख्या करते हैं | श्रुति हनीफ की पत्नी है जो लेखिका हैं तीनों चाहते है की शहर में हो रहे दंगो पर अख़बार में लिखे समाज को दंगो की असलियत का पता चले दंगो पर लिखना कठिन काम हैं साथ ही साथ जोखिम भरा भी | लिखा कैसे जाये ,उन्हें लगता है कि लिखना बेईमानी हैं श्रुति के मन में द्वन्द निर्माण होता हैं श्रुति कहती हैं " सब रटी रटाई बातें हैं जिनको लिखने से कुछ नहीं होगा क्योंकि वह हर तरफ नकारी जा रही हैं सरकारी नरो की तरह बेमतलब हो चुकी हैं."[1] उपन्यास में मठ की राजनिति का भी चित्रण दिखाई देता हैं साथ ही अद्भुत चमत्कार का भी चित्रण गीतांजलि श्री ने बड़ा सटीक चित्रण किया हैं | "देवी के मंदिर में एक पुजारी पुजा कर रहा था अचानक अक सांप निकला उसे देख कर पुजारी ने नागदेवता समजकर प्रणाम किया तभी देवी प्रगट हुई और बोली मैं मैं जो कहती हूँ उसे ध्यान से सुनो :ये सांप वो हैं जो थोड़े थोड़े दिनों के बाद पृथ्वी पर जन्म लेते हैं ,और लोगो का धर्मनाश करते हैं ,इनका नाश करो ,जो आदमी ऐसा करेगा मेरे नाम के दो हजार पर्चे बाँटेगा उसकी मनोकामना चौबीस दिनों में पुरी होगी और जो व्यक्ति आज – कल करेगा चौबीस दिन बिताएगा उसका बहुत बड़ा नुकसान होगा"[2] गीतांजलि श्री ने बाबरी मस्जिद को तोड़े जाने के प्रसंग को इस प्रकार लिया हैं " अभी तक मठ के मंदिर की धूम थी ,अब एक नयी उमंग जागी है,दूर –दूर से भक्त आ रहे है और शहर के किनारे पड़े खंडहर नुमा मस्जिद जिस पर कहते हैं कि वानर सेना ने मठ का ध्वज फहराकर मंदिर बना दिया हैं मंदिर में मथा टेकने जाते ...हम जा चुके ,उस मस्जिद नहीं मंदिर असल में महकवाले खंडहर में"[3] भारत देश बहुधर्मीय देश ,अलग – अलग धर्म के लोग रहते है उपन्यास में गलत राजनिति का उदा. इस प्रकार देख सकते है | " भारत को महान बनाना हैं मस्जिद तोड़ गिराना है"[4]

उपन्यास में विश्वविद्यालय में होनेवाली राजनिति तथा गुटबाजी का भी चित्रण हैं शरद हनीफ विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में प्रोफेसर ,प्रोफेसर नंदन के बाद क्रम से प्रोफेसर हनीफ का नंबर आता हैं लेकिन वह मुसलमान होने के कारण विश्वविद्यालय से हटाने का असफल प्रयास किया जाता ,शरद और हनीफ बेहद ईमानदार प्रोफेसर हैं , दोनों के ढेर सारे पेपर प्रकाशित है | दोनों पूरी लगन से पढ़ाते हैं | वे इतिहास के प्रोफेसर हैं इसीलिए धर्मनिरपेक्ष है | छात्र संघ को इनकी धर्मनिरपेक्ष बाते पसंद नहीं है वे शरद के खिलाफ तो केवल पत्थर ही फेंक सकते थे | क्योकि वह धर्मनिरपेक्ष हैं ,लेकिन हनीफ के विरुद्ध तो कुछ भी हो सकता है,छात्र संघ प्रस्ताव पारित करता है कि " हनीफ को यूनिवर्सिटी से डिसमिस किया जाए"[5] शरद इस प्रस्ताव का विरोध करता हैं केकिन सुखद प्रसंग यह हैं कि स्वयं कुलपति भी इस प्रस्ताव की निंदा करते हैं | कुलपति ने कहा " स्टूडेंट यूनियन का काम न किसी की नियुक्ति से है न किसी की बर्खास्तगी से हनीफ देश विदेश में प्रसिद्ध हैं यूनिवर्सिटी को उन पर नाज है स्टूडेंट यूनियन उलटी सीधी राय देकर जो दुस्साहस दिखाया वह निंदनीय "[6] उपन्यास का कथानक सहज और सरल हैं उसमें कोई भी और किसी भी प्रकार की खींचतान नहीं हैं पूरा उपन्यास वर्तमान पर चलता हैं पूरा शहर दंगो से परिचित था | शहरों में दंगों की खबर सुनने के बाद उनके मन में कोई भी और किसी प्रकार की भावना दिखाई नहीं देती वे दंगो को नजदीकी से देखते हैं उपन्यास में राजनिति तथा वर्तमान स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया ,तथा हिन्दू धर्म में प्रचलित रूढ़िपरम्परा का चित्रण किया गया ,इसीलिए यह उपन्यास भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति को यथार्थ रूप में प्रकट करनेवाला उपन्यास हैं |

****

संदर्भ :

हमारा शहर उस बरस – गीतांजलि श्री पृ. क्र. 7
वहीं – 257
वही – 97
वहीं- 117
वहीं – 272
वहीं - 272
वहीं - 274

जनजातियों का राजनीतिक अभिविन्यास: मध्य प्रदेश की जनजातीय समाज का एक अध्ययन

श्री रामराज सिंह
शोधार्थी,सहायक प्राध्यापक
राजनीति विज्ञान, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,वैढन
जिला-सिंगरौली (म.प्र.)

सारांश- भारत दुनिया का सबसे बडा लोकतंत्र है। इस लोकतंत्र की विशिष्टता है-विविधता। अनेक विविधताओं में सामाजिक विविधता की परिचायक जनजातियाँ भी हैं जो कि देश के विभिन्न क्षेत्रों में निवासरत हैं। मध्यप्रदेश जनजातीय जनसंख्या की दृष्टि से एक समृद्ध प्रदेश है। इसमें जनजातियों का एक विशाल समूह वास करता है। अन्य समाजों से पृथक इनकी सामाजिक मान्यताएँ व प्रथाएँ हैं। जनजातीय समाज की इसी विशिष्टता ने उनके राजनीतिक ज्ञान को भी प्रभावित किया है, जिससे उनकी राजनीतिक समझ, उनकी अभिरूचि, जागरूकता एवं दृष्टिकोण में भिन्नता परिलक्षित होना स्वाभाविक है। इन जनजातियों का राजनीतिक अभिविन्यास मध्यप्रदेश की राजनीति और समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साथ ही यह उनके विभिन्न आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मुद्दों पर भी प्रभाव डालता है। जनजातियाँ, अपनी विशेषता के कारण राज्य की राजनीतिक समस्याओं और मांगो को अलग तरीके से देखती हैं तथा अपने हितों को प्राथमिकता में रखती हैं। इसीलिए जनजातियों के अभिविन्यास का अध्ययन उनके समृद्ध संस्कृति, सामाजिक और आर्थिक संस्थानों के साथ-साथ संवैधानिक प्रक्रिया, राज्य और सरकार की नीतियाँ, सामाजिक और आर्थिक विकास आदि के साथ देखा जाना चाहिए।

बीज शब्द- जनजाति, राजनीतिक अभिविन्यास, लोकतंत्र, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संस्कृति, सामाजिक मान्यता, प्रथा, विविधता, राजनीतिक परिवेश, राजनीतिक संस्कृति।

उद्देश्य:- प्रस्तुत अध्ययन भारतीय सामाजिक व्यवस्था के उस भाग पर निहित है जिनकी पहचान आधुनिक समाज व भारतीय संविधान में जनजाति के रूप में की जाती है। लोकतंत्र की मूल धारणा ही समावेशी सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था में निहित है। सशक्त लोकतंत्र की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि समावेशी समाज के प्रत्येक हिस्से की समान भागीदारी सुनिश्चित हो। समाज के लोगों के राजनीतिक अभिवृत्ति व दिग्विन्यास से ही राजनीतिक व्यवस्था के प्रति उनके विचार एवं दृष्टिकोण को समझा जा सकता है। इससे उनकी राजनीतिक अभिरूचि, ज्ञान एवं सहभागिता के विभिन्न प्रभावी कारकों को समझने में मदद मिल सकती है जिसका योग किसी न किसी रूप में आदर्श लोकतंत्र की स्थापना है।

प्रस्तावना:- भारत को विस्तृत भौगोलिक भू-भाग के साथ विशाल लोकतांत्रिक व्यवस्था एवं समृद्ध सामाजिक व्यवस्था के लिए विश्व में पहचाना जाता है। इसकी समृद्ध व्यवस्थाओं एवं सामाजिक विविधता ने जहाँ एक ओर विचार एवं व्यवहार को व्यापकता प्रदान की है तो वहीं यह लोगों के समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी प्रस्तुत की है। यही कारण है कि आज समाज एवं नागरिकों के कर्तव्य में बढ़ोतरी हुई है। भारतीय संविधान ने अनेक सामाजिक विभेदों को समाप्त करने के लिए सार्थक प्रयास किए है किन्तु इस सामाजिक एकत्व को प्राप्त करने एवं उसे बनाए रखने के लिए लोगों में लोकतांत्रिक मूल्यों की पहचान एवं उसमें उनकी आस्था को बढ़ाना नितांत आवश्यक है। भारत के प्रत्येक नागरिक का यह स्थापित कर्तव्य है कि वह सामाजिक विविधता के अंतर्भावना को जीवंत रखते हुए लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास करें, यह तभी संभव है जब लोगों में इसके प्रति सामाजिक व राजनैतिक जागरूकता विकसित हो।

मध्यप्रदेश राज्य में जनसंख्या की दृष्टि से कुल निवासरत जनसंख्या का 21.1 प्रतिशत भाग अनुसूचित जनजातियों का है। यहाँ जनजातीयों के वर्गीकरण की दृष्टि से देखा जाए तो 24 प्रमुख जनजातियाँ निवासरत हैं जिनकी उपजातियों को मिलाकर कुल संख्या 90 होती है। जनसंख्या की दृष्टि से मध्यप्रदेश में जनजातीयों की कुल जनसंख्या 1.53 करोड़ है। यह भारत के किसी भी राज्य की तुलना में कुल जनसंख्या का सर्वाधिक संख्यात्मक एवं मात्रात्मक अनुपात है। इस प्रकार मध्यप्रदेश देश का ऐसा राज्य है, जहाँ हर पांचवाँ व्यक्ति अनुसूचित जनजाति वर्ग का है। मध्यप्रदेश में जनजातीय समाज का भौगोलिक वितरण एकसमान नहीं है किन्तु अलग-अलग क्षेत्रों में जनजातियों की भिन्न-भिन्न सामाजिक समुदाय असमान रूप से निवासरत हैं। राज्य में सर्वाधिक जनसंख्या अलीराजपुर जिले में तथा सबसे कम भिंड जिले में पाई जाती है। भौगोलिक असमानता, जनजातीय समाज की विविधता, सांस्कृतिक अनेकता आदि ने इनके दृष्टिकोण को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। वर्तमान संदर्भ में भारतीय समाज के वंचित वर्गों के उत्थान के लिए अनेक प्रयास हो रहे हैं, किन्तु सामाजिक जागरूकता के अभाव में लक्ष्य को हासिल कर पाना अत्यंत दुर्गम कार्य है। राजनीतिक जागरूकता ही व्यक्ति के दृष्टिकोण व समझ को बढाता है जिससे लोगों का राज्य, समाज और राजनीतिक व्यवस्था में उनके योगदान को सुनिश्चित किया जाता है। राजनीति के प्रति यह दृष्टिकोंण ही उनका राजनीतिक अभिविन्यास है। दूसरे शब्दों में, राजनीतिक अभिविन्यास 'राजनीतिक व्यवस्था के प्रति आस्था, समझ एवं दृष्टिकोण का निर्माण है।' राजनीतिक व्यवस्थाओं के प्रति अभिविन्यास के माध्यम से व्यक्ति उस व्यवस्था का अंग बनता है जिससे सहभागी लोकतंत्र को बल मिलता है। यह संविधान तथा संवैधानिक तंत्रों के प्रति अभिरूचि व उसमें आस्था व विश्वास की भावना को बढ़ाता है। इसके माध्यम से राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक जागरूकता, ज्ञान एवं राजनीतिक संस्कृति को उस राजनीतिक व्यवस्था में स्थापित किया जाता है। स्वतंत्रता के 75 वर्ष पूर्ण हो जाने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि समाज के प्रत्येक हिस्से का आँकलन किया जाए कि इनमें राजनीतिक मूल्यों की स्थापना में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है।

मध्यप्रदेश के जनजातियों के विशेष संदर्भ में अनेक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि यहाँ जनजातियों के अभिविन्यास का निर्माण उनकी सामाजिक स्थिति एवं स्थानीय मुद्दों पर आधारित होता है। प्रदेश में जनजातियों में भी पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। प्रमुख जनजातियों में गोंड, भील, बाघेली, सहरिया, भडावर, कोल, कान्हर और भूमिया आदि शामिल हैं जिनकी स्थानीय संस्कृति, जरूरतें, इच्छा एवं आकांक्षाएँ होती हैं। यही कारण है कि स्थानीय मुद्दों का व्यापक प्रभाव इनके राजनीतिक ज्ञान एवं दृष्टिकोंण पर पड़ता है। मध्यप्रदेश की जनजातियों में राजनीतिक ज्ञान के विकास के प्रमुख कारकों या मुद्दों में निम्न का शामिल होना पाया जाता है-

समुदाय का विकासः- जनजातियों के राजनीतिक नेताओं एवं उनके संगठनों का मुख्य लक्ष्य समुदाय का विकास को सुनिश्चित करना होता है। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के मुद्दे हो सकते हैं। यदि राजनीतिक व्यक्तियों एवं संगठनों द्वारा जनजातियों के विकास के लिए कार्य किए जाते हैं तो इसका प्रभाव केवल समुदाय के

विकास तक ही सीमित नहीं होता, बल्कि सम्पूर्ण समुदाय का सदस्यों का जुडाव राजनीतिक व्यवस्था के साथ बढता है तथा राजनीतिक सहभागिता को बल मिलता है। व्यवस्था के प्रति सम्मान पनपता है एवं संगठनों के विश्वसनीयता का भाव स्वतः उत्पन्न होता है।

भूमि संबंधी संघर्ष और मुद्दे:- बहुत सी जनजातियाँ भूमिहीन एवं भूमिकर होती हैं और उन्हें उनकी भूमि से जुड़े मुद्दे जैसे भूमि का हक एवं संरक्षण, जल-जंगल-जमीन आदि के हक के बारे में अपने अधिकारों की रक्षा करने की जरूरत होती है। जनजातीय समुदाय के लोग अपनी विभिन्न समस्याओं जैसे समान अधिकार, आदिवासी विकास और शिक्षा आदि से संबंधित मुद्दों से जनजातीय समुदाय अत्यधिक सक्रिय होते हैं और इसके लिए वे निरंतर संघर्ष होता है जिसका उनके अभिविन्यास पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

सांस्कृतिक मुद्दे:- जनजातियों की अपनी विशेष सांस्कृतिक परंपराएँ, रीति-रिवाज, धरोहर और संस्कृति को सुरक्षित करने की चुनौतियाँ होती हैं। इससे यह समुदाय अत्यंत संवेदनशील रूप से जुड़े होता है।

सामाजिक न्याय:- जनजातियों के अधिकारों की सुरक्षा और सामाजिक न्याय के लिए राजनीतिक अभिविन्यास महत्वपूर्ण होता है।

आरक्षण नीतियाँ:- जनजातियों के लिए आरक्षण नीतियाँ उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से सुदृढ़ करने के लिए अहम होती हैं। जनजातियों के नेता इसे लेकर अपने समुदाय के हित में काम करते हैं। जनजातियों का राजनीतिक अभिविन्यास राज्य सरकार के साथ संघर्षपूर्ण होता है, क्योंकि वे अपने अधिकारों की सुरक्षा और समृद्धि के लिए लड़ते हैं। जनजातियों के नेता राज्य सरकार की नीतियों पर प्रभाव डालते हैं और उन्हें अपने समूह के हित में नीतियाँ बनाने की मांग करते हैं।

जनजातीय संस्कृति एवं परंपरा:- जनजातियों की जीवनशैली, संस्कृति और परंपरा, उनके राजनीतिक अभिव्यक्ति को प्रभावित करते हैं।

जनजातियों की सामाजिक संरचना एवं संगठन:- जनजातियों की सामाजिक संरचना, ग्रामीण समुदाय की संगठनों, पंचायती राज, आदिवासी समितियाँ आदि उनके राजनीतिक अभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राजनीतिक अभिविन्यास के निर्माण में सामाजिक संगठनों का विशेष योगदान होता है। ये संगठन समुदायों से जुड़े मुद्दों को उठाते हैं, समर्थन प्रदान करते हैं तथा सरकार से अधिकारों की मांग करने में मदद करते हैं। इन मुद्दों और अध्ययन के आधार पर जनजातीय समुदायों के राजनीतिक अभिविन्यास का विश्लेषण करके उनकी समृद्धि, सामाजिक समानता तथा सामर्थ्य के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

आर्थिक मांगें:- जनजातियों की आर्थिक मांगें समय-समय पर राजनीतिक दलों के क्रियाकलापों को प्रभावित करती हैं, जिससे उनकी राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति होती है।

आरक्षण एवं समरसता:- जनजातियों को आरक्षण एवं समरसता के माध्यम से राजनीतिक समावेशन में सहयोग मिलता है।

राजनीतिक प्रतिनिधित्व:- जनजातीय समुदायों को राजनीतिक प्रक्रिया में सम्मिलित करने के लिए उन्हें विधानसभा एवं लोकसभा में प्रतिनिधित्व देने के लिए चुनावी क्षेत्रों को अलग-अलग तरीके से बाँटा जाता है। इन समुदायों के प्रतिनिधि राजनीतिक प्रक्रिया में अपने मुद्दों एवं मांगों को उठाते हैं।

सांविधानीकरण:- जनजातीयों के लिए संविधान के तहत आरक्षण तथा उन्हें समाज में समानता के लिए विशेष विधाएँ बनायी गयी हैं। इसके माध्यम से भी राजनीतिक समुदायों में अपने हित एवं अधिकार के संबंध में जागरूक करते हुए सबल बनाया जाता है जो उनमें राजनीतिक चेतना के विकास में सहायक होता है। भारतीय संविधान ने भी जनजातियों के उत्थान के लिए अनुसूची 5 में अनुसूचित क्षेत्र तथा अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण का प्रावधान है। अनुच्छेद 17 समाज में अस्पृश्यता का निषेध करता है। साथ ही नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 46 के तहत राज्य को यह आदेश दिया गया है कि वह अनुसूचित जाति/जनजाति तथा अन्य दुर्बल वर्गों की शिक्षा और उनके अर्थ संबंधी हितों की रक्षा करे। मध्यप्रदेश राज्य में अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा करने एवं उसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए 2003 में 89 वें संविधान संशोधन के द्वारा अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है। अनु. 330 एवं 332 लोकसभा एवं विधानसभाओं में अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण प्रदान करता है। संविधान में प्रदत्त संरक्षण एवं विकास के प्रावधानों से जनजातियों में सुरक्षा का भाव आया है। वे स्वतंत्र रूप से अपने अधिकारों की मांग कर अपने लिए विकास का मार्ग स्वयं प्रशस्त कर रहे हैं और समाज की मुख्य धारा से जुडने का प्रयास कर रहे हैं। जनजातीय समुदाय के लोग संवैधानिक प्रक्रिया से अवगत हो रहे है और समाज में बढ-चढ कर अपने अधिकारों का उपयोग करने में सक्षम हो रहे हैं।

शिक्षा और ज्ञान:- शिक्षा और ज्ञान के माध्यम से जनजातियों के राजनीतिक अभिव्यक्ति तथा उनके अभिविन्यास में सहयोग मिलता है। राजनीतिक अवधारणा के निर्माण में इन सबके साथ शिक्षा की भूमिका सबसे प्रभावी एवं प्राथमिक है। शिक्षा ही ऐसा माध्यम है जिससे व्यक्ति की चेतना जागृत होती है तथा उसमें समझ विकसित होने से नया दृष्टिकोण पनपता है। राजनीतिक अभिमुखीकरण एक ऐसा ही राजनीति के प्रति दृष्टिकोण है जिसमें शिक्षा के योगदान को तार्किक विश्लेषण के आधार पर समझा जा सकता है। "मध्यप्रदेश की जनांकिकीय आँकड़े 2011 की जनसंख्या के आधार पर 153.16 करोड़ जनसंख्या जो कि राज्य की कुल जनसंख्या के 21.10 प्रतिशत भाग के शैक्षणिक उन्नति के लिए प्रदेश की आयोजना मद का 21.10 प्रतिशत हिस्सा अनुसूचित जनजाति उपयोजना के तहत प्रावधानित किया जाता है।" राज्य की जनजातीय शिक्षा की सुदृढ व्यवस्था के लिए मध्यप्रदेश जनजातीय कार्य विभाग कार्यरत है। जनजातीय कार्य विभाग को शैक्षणिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए प्रदेश की सम्पूर्ण जनजातीय क्षेत्रों को 89 जनजातीय विकासखंडों के रूप में पहचान की गई है तथा ऐसे सभी आदिवासी विकासखंडों में प्राथमिक शिक्षा से लेकर हायर सेकेन्डरी तक की शिक्षा का दायित्व विभाग के पास है। इन सभी प्रयासों से जनजातीय अंचल में शिक्षा के स्तर में काफी विस्तार हुआ है।

संचार व आवागमन:- तीव्र संचार क्रांति ने समूचे विश्व को एक वैश्विक गांव के रूप के रूप में समेट दिया है। बढते संचार के साधनो यथा टीव्ही, इंटरनेट, मोबाइल फोन तथा डिजिटल दुनिया ने सूचनाओं के आदान-प्रदान को अत्यंत सरल एवं सुगम बना दिया है। आज दुनिया का कोई क्षेत्र नहीं बचा जो संचार क्रांति के पहुँच से बाहर हो। साथ ही शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान, कला तथा सरकरी गतिविधियों को सूचना एवं तकनीकी के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है। इसका सीधा प्रभाव मनुष्य के चेतन मन पर पडता है जिससे उसकी अभिवृत्ति में परिष्कार होता है। राजनीतिक अभिविन्यास का संबंध भी इसी से है। इस प्रकार मध्यप्रदेश के जनजातीय समुदायों के राजनीतिक अभिविन्यास का अध्ययन उनके समृद्धि, सामाजिक समानता और सामर्थ्य के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

निष्कर्ष:-मध्यप्रदेश के जनजातीय समुदाय के राजनीतिक अभिविन्यास का अध्ययन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक समानता के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। यह अध्ययन उन समुदायों के

प्रतिनिधित्व, उनकी समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष, संविधानीकरण, पारंपरिक संरक्षण और सामाजिक संगठन के विकास जैसे मुद्दों पर ज्ञान प्रदान करता है।

इस अध्ययन के माध्यम से उन्हें राजनीतिक प्रक्रिया में अपनी मांगों और मुद्दों को उठाने का तरीका सीखने में मदद मिलती है। जनजातीय समुदायों के समर्थन पर ध्यान देने से उनके समाज में समानता और विकास की प्रक्रिया को संवर्द्धन किया जा सकता है। संघर्ष के माध्यम से जनजातीय समुदाय अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं और अपने विकास के लिए निरंतर प्रयास कर सकते हैं।

सांविधानीकरण और आरक्षण की प्रक्रिया के माध्यम से जनजातीय समुदायों को समाज में जिम्मेदारी और सम्मान मिलता है। इससे उनका सामाजिक सम्मान बढता है और वे समाज के साथी बनकर समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर होते हैं। इस अध्ययन से उन्हें अपनी पारंपरिक संस्कृति और धार्मिक अभिव्यक्ति के लिए नए उपायों का पता चलता है, जिससे उन्हें अपनी पहचान और विरासत को संरक्षित रखने में सहायता मिलती है। सामाजिक संगठन के विकास से जनजातीय समुदाय अपने मुद्दों को संघर्ष करने के लिए सक्रिय हो सकते हैं और राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं। इससे उनके समाज में समानता, समरसता और संवृद्धि का निर्माण होता है। इस प्रकार, मध्यप्रदेश के जनजातीय समुदायों के राजनीतिक अभिविन्यास का अध्ययन समाज और राजनीति में समानता, समरसता और समृद्धि को बढाने में महत्वपूर्ण योगदान करता है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:
1.राजनीतिक संस्कृति, ई-ज्ञानकोष पेज-17
2.जनजातीय कार्य मंत्रालय म.प्र. की वेबसाइट अनुसार जनसांख्यिकीय, 2011
3.राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, विशेष रिपोर्ट मई 2012

Youths and Hobbies

Sri. Mallikarjun Murigeyya
Hiremath
Assistant Professor
HOD of Sociology
Mo.9480534820

Men are differ from animals due to his thinking, expression and creativity. Youths are more creative, energetic and productive in this stage. So the stage of youth and youths are playing vital role in national progress and development. Therefore solid and strong youths are the sources of the best future of our nation and globe. Youth- He/she is fruitful to his/her own family, to society and even to his /her own self, when they are rich, in the sense of good health, sense of rationality, scientific outlook, spirituality, tender feelings towards nature and environment, motto of universal service and love etc.

Hobby is an activity or interest pursued for pleasure or relaxation and not as a main occupation. It is supportive to or supplementary to the main occupation of his / her life. There is a **clear difference** between hobby and habit**. Hobby is a regular or repetitive activity that is done for enjoyment**/ pleasure. Whereas **a habit is a regular action or behavior that is acquired through frequent repetition**, which may causes positive or negative result.

Personality of Youths is glorifying and respecting on their hobbies, which are being as their routine. Hobbies are playing dominant role in furnishing their leisure time as pleasant and profitable. So it's very difficult to find a men /women who is **without hobby in his/her life**. These activities are help us in keeping our mind and body in a relaxed and refreshed mood. Moreover hobbies are increase our productivity and improve our overall health.

Hobbies of Modern Youth

Today's youths are growing with their own hobbies day by day. Young generation want to be fulfilled variety of interests and wishes. For example, few wants to get pleasure from life, others - thrills, others- adventures, others-to enhance their self - esteem and few are simply like to learn something. It's important for the parents to be aware of all the all the hobbies that are somehow present in the life of their child or teenager or an adult, but also a boy or a girl.At present, Hobbies are categories in three in broader sense:-

1. Creative hobbies.
2. Sports/ healthy hobbies and
3. Others.

Creative hobbies: We can say that young boys and girls are more interested in hobbies, which are related to

technology. Usually, boys are adventurous in Photography, where as girls are interested in makeup, fashion, body art, embroidery works. These are consider as the main Youth creative trends. This hobby of Photography has provided national and international recognition, honors and awards to those dedicated photographers. And now it is turning as "Selfie" addiction in the name of adventure. For this several social networks are becoming popular and mobile is mainly using for photographs, and use them as painting and posters.

Painting is another creative hobby among the young generations. Children and youths are interested in painting comics, cartoons, animations and other creative niches are very popular. Now this hobby move to a more professional level- guys and girls begin to draw with the help of computers and tablets. Graffiti, which began at the end of the 20th century, also continues to gain momentum. The majority of the young peoples are active in blogging, whoever, there is some prejudice against bloggers and various social networks. Another part of the young people dream of becoming bloggers. The most popular hobbies are fashion, news coverage, video production and makeup.

Needlework is mainly done by girls. Handmade unique items of various categories are becoming more and more popular. Most of them are netting, embroidering, designer jewelry and various clothing and less often engaging in jewelry or decorative elements.

Sports Youth Hobbies:- Sports are not so popular among school age teenagers. Young peoples want to improve their self-esteem. Fitness as hobby, is much popular. Most of guys and girls are love to spend time in fitness rooms to improve their physical condition. Even adults are also crazy to attend gyms to maintain their slim figure. Football, Volleyball, basketball, cycling, jogging, running and swimming etc. are the other habitual practices and also athletics.

Trucking and rock climbing are more accessible in cities than wild. Most of those who goes for rock climbing on specially equipped platforms are young people, adolescents boys and girls equally. Hiking with close borders, has become very popular. Various companies organize tours and trips to mountains, to water pools or simply to places with a picturesque land scape.

Volunteering, all most every young people has thought about volunteering at least once. One of the most popular area is blood donation.

Trips, most of today young people love travel and are happy to share impressions and pictures from their trips. Every young man has a desire to go abroad or live in other locality. There are whole armies of fans of online games. A lot of guys spend their lot of time in computer clubs, pub-G and other games.

Other hobbies are in practice from their parents, elders, friends and celebrities impression. The most general hobbies among youths and adults are gardening, nourishing pets, floriculture, making bouquets, decorating their houses and showcases, reading texts, poetry, story writing, singing, dance practicing, writing dairy, visiting relatives and friends periodically, gathering with likeminded peoples, rendering services as volunteers in the crises and accidents in the native, and national and international level. Chanting and meditating, participating in mass bhajans in temples and religious sites etc.

Impacts of Hobbies:-

Every action in this universe has effects for each act. The impact of an action is both side, i.e. positive and negative. Similarly hobbies of youths having double effects- positive as well as negative in according to their practice of hobby.

Positive impacts:

1. Hobbies improves and stabilizes the health of mind and body.
2. It reduces stress and strains, lower blood pressure and heart rate
3. Hobby cultivates positive attitudes among youths.
4. These boosts concentration, self - confidence, analytical and reasoning, problem solving and decision making capabilities.
5. Hobbies improve mood and self - esteem and feeling of happiness with peace of mind.
6. Hobbies grants social identity and prestige in his/her society.

Negative effects:-

1. Few hobbies may expensive and time consuming.
2. Extreme sports can lead to severe injuries or even death.
3. Excessive concentration on hobby will lead to isolate and harmful to familial relationships.
4. Addiction to mobile games leads dangerous to his/her life. And most of youths, teenagers had committed suicides.
5. Screen addiction results anxiety and phobia of loss of sense and emotional disturbances.

In this way, there is interrelation between youths and Hobbies. Hobbies are inseparable from our life. These are like a golden knife, we must use as per need. Youths are essential to our society and the world these young generation is our first and the last hope for better citizens of nation and mankind. Therefore, youths are able, active, creative and energetic for sustainable development of nation and glob. This condition is tuned by good and healthy hobbies among the youths. Hobbies of youths polishes the future and personality. In this direction youths must cultivate suitable hobby, which his /her life decorates along with their community.

****

स्वतंत्रता आन्दोलन के पूर्व का भील जनजाति का इतिहास

नीतेश मेश्राम[1]
शोधार्थी समाजशास्त्र
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय,रीवा (म.प्र.)

डॉ. मधूलिका श्रीवास्तव
प्राध्यापक समाजशास्त्र
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश:- सन् 1857 के भील क्रान्तिकारी भीमा और नीमला नायक, विसराम, खुमान, सतनिरू आदि के नाम आज भी हमारे बीच में चर्चा का विषय बने हुए हैं। क्योंकि यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य है कि सम्पूर्ण उत्तरी भारत में जब सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम को अंग्रजी हुकूमत ने अपनी शक्ति से कुचल दिया था, तब भी निमाड़ के लोगों में विशेष कर भील-भिलालों ने चार साल बाद तक सन् 1861 ई. तक अंग्रेजी हुकूमत से पंगा लिया था। इस अंग्रेजी शासन के संघर्ष में अनेक आदिवासी अपने प्राणों की बलि न्योछावर कर दिया तथा कइयों को काला पानी की सजा सुना दी गई एवं न जाने कितने लोगों को फांसी पर लटका दिया गया। निमाड़ में भील क्रान्तिकारियों पर महारानी विक्टोरिया के क्षमादान के बावजूद मुकदमा चला और 1861 ई. में अनेक भील क्रान्तिकारी को फांसी पर लट्का दिया गया।

मुख्य शब्द - स्वतंत्रता आन्दोलन, पूर्व, भील जनजाति, इतिहास।

प्रस्तावना:- सन् 1857 की क्रान्ति के दिनों में सम्पूर्ण निमाड़ में क्रान्तिकारियों का जाल फैल गया था, जिससे निपटने के लिए गुजरात से 9वीं बंगाल इंफैन्ट्री बुलाना पड़ा था। अंग्रेज सैनिक टुकड़ी को साथ लेकर आये आर.एच. केटिंग्स ने स्वयं भीमा नायक व उसके अनुयायिओं को विनष्ट करने का दायित्व संभाला था। उसकी टुकड़ी व भीमा के अनुयायिओं के बीच धावा-धावड़ी नामक पर्वतीय धारी में पहली मुठभेड़ हुई थी, जिसमें पराजय समीप देखकर भील क्रांतिकारी समीपवर्ती जंगलों में छिप गये थे।

अंग्रेज सेना निरंतर उन क्रान्तिकारी सेना को खोजती रही और अंततः सतपुड़ा पर्वतों में स्थित रामगढ़ के उत्तर में पंच बावली नामक स्थान पर सन 1859 ई. को निर्णायक जंग लड़ा गया, जिसमें भील क्रान्तिकारी को पराजित होना पड़ा।

विश्लेषण: - 1 जुलाई सन् 1857 को इंदौर के क्रांतिकारियों की तोपों ने इंदौर रजीडेंसी पर आग उगलना प्रारम्भ कर दिया था और अनेक अंग्रेजी अधिकारी को मौत के घाट उतार दिया। उसी दिन क्रान्तिकारियों द्वारा चलाई जा रही मह् की तोपों की गर्जना मंडलेश्वर में सुनाई दी। उन दिनों मंडलेश्वर में अंगेजों का राज था। अंग्रेजी खजाना मंडलेश्वर के किले में था, सो आत्मरक्षा के लिए अंग्रेज अधिकारी भी वहाँ जाकर एकत्रित हो गये। इसी बीच मंडलेश्वर में यह समाचार फैल गया कि क्रांतिकारियों द्वारा किले पर आक्रमण किया जायेगा। तब अंग्रेजों ने तमाम भीलों को एकत्रित किया और उनसे होने वाले युद्ध के लिए तैयार रहने को कहा गया, किन्तु भीलों ने अंग्रेजी पक्ष की ओर से लड़ने से स्पष्ट इनकार कर दिया। इससे सशंकित होकर अंग्रेजों ने भीलों पर से विश्वास करना बंद कर दिया। तत्काल भीलों को सुरक्षा चौकियों से हटा दिया गया, भीलों के इस रुख से अधिकारियों की नींद हराम हो गयी। आदिम, निरीह, पिछड़े कहे जाने वाले भीलों में राष्ट्रीय चेतना का ऐसा अभूतपूर्व संचार हुआ जिसका उदाहरण आजादी की लड़ाई के इतिहास में अन्यत्र नहीं मिलता। भीलों ने क्रांतिकारियों के खिलाफ विदेशी हुकूमत के पक्ष में मोर्चा लेने से इनकार तो कर ही दिया, बल्कि इन गोरी हुकूमत के विपक्ष में खड़े होकर इनके खिलाफ तीर कमान औरी फालियें भी उठा लिये। रेवालिया नायक और उसके संबंधियों ने बड़वानी से दक्षिण-पूर्व में स्थित अकबरपुर में विद्रोह का झंडा बुलंद किया और खानदेश के गाँव-गाँव में जाकर क्रान्ति की अलख जगायी। बड़वानी व सेंधवा के बीच के टुकड़ों में भील नायक भीमा और खोजेव सिंह ने मोर्चा संभाल लिया था। चारों ओर विद्रोह व हिंसा के स्वर गूँज रहे थे।

निमाड़ में इस प्रतिशोध ने जनक्रांति का स्वरूप धारण कर लिया था, स्थिति जब अंग्रेजों ने नियन्त्रण से बाहर जाती हुई प्रतीत हुई तो उन्हें गुजरात स्थिति अंग्रेजी फौज का सहारा लेना पड़ा। उनके सहयोग के बिना अंग्रेजी शासन क्रांतिकारियों के दमन हेतु अभियान चला ही नहीं सकती थी। क्योंकि सारे बड़वानी राज्य में सीमावर्ती क्षेत्रों में क्रान्तिकारी फैल गये थे। इस अंग्रेज सेना के पहुँचने का समाचार जब भील क्रांतिकारियों को मिला तो उनका दबाव बड़वानी की अपेक्षा सेंधवा क्षेत्र में अधिक बढ़ गया। इस पर खानदेश के अंग्रेज जिलाधीश ने एक चेतावनी जारी की कि व्यापारीगण अपना सारा पैसा ब्रिटिश संरक्षण में लगाये। इस चेतावनी पर सेंधवा के व्यापारीगणों ने थोड़ा-थोड़ा धन अंग्रेजी कोष में जमा करवा दिया। इस जमा धन को चोरी छिपे गोपनीय तरीके से सेंधवा से अन्यत्र ले जाया जा रहा था कि भीलों ने उस पर आक्रमण करके उस धन को लूट लिया गया। किन्तु बाद में ब्रिटिश सैनिक की सहायता से 1,20,000/- रुपये वापस बरामद कर लिये गये। उस समय निमाड़ का कार्यवाहक पोलिटिकल एजेंट के आदेशानुसार उस बरामद पैसों को सैनिक को आपस में बाँट दिया गया।

खरगोन व उसका समीपवर्ती क्षेत्र क्रांतिकारियों का प्रमुख क्षेत्र बन गया था। इन गतिविधियों को दबाने के लिए होलकर सिपाहियों का एक दल खरगोन भेजा गया, जिसमें 150 सिपाही थे इस टुकड़ी के 30 सिपाही केटिंग ने अपने पास रख लिए व दिलशेरखान को हिदायत दी गई कि वह विद्रोहियों को वार्ताओं में उलझाये रखे। तत्कालीन सूचना से ऐसा प्रतीत होता है कि दिलशेर खान की सहानुभूति ब्रिटिश कम्पनी के साथ न होकर क्रांतिकारियों तक अंग्रेजों को भ्रम में रखा और क्रांतिकारियों के साथ थी, उसने तक अंग्रेजों की गोपनीय सूचनायें पहुँचा दी। इस पर 500 क्रांतिकारियों का एक सशक्त दल सुनिश्चित खबर मिलने पर, भीकन गाँव में एकत्रित हो गया। दिलेश्वर खान को तत्काल वक्षी खुमान सिंह वापस बुला लिया। तदंतर 100 यूरोपीय सिपाहियों की टुकड़ी खरगोन की तरफ रवाना हो गयीं। इस टुकड़ी के खरगोन पहुँचने के पूर्व क्रांतिकारी खरगोन के शिविर पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने महल की दिवारों को ध्वस्त कर दिया। इस आक्रमण से ब्रिटिश सैनिक भयभीत हो गये।

क्रांतिकारियों ने मूलतः सैनिक उपयोग की वस्तुओं को ही छीना था। निश्चय ही आम नागरिकों को उन्होंने परेशान नहीं किया। खरगोन के समान ही समीपवर्ती छोटे-छोटे कस्बों में भी विद्रोह की ज्वाला भड़की। वहाँ के मण्डलोई रघुनाथा सिंह स्वयं क्रांतिकारियों का नेतृत्व किया। उसने अपनी भील सेना को एकत्रित कर वहाँ के वहिवटदार को हटा दिया। देखते ही देखते क्रांतिकारियों की संख्या 3000 हो गयी, जिसमें तमाम भील सिपाही और 200 बंजारे अपनी बैलगाड़ियों सहित आ मिल थे। उधर बड़वानी के क्षेत्र में भीमा नायक व उसके सहयोगी भीलों ने अंग्रेजी शासन को नांकों चने चबवा रखे थे। अंग्रेजों ने भीमा की गिरफ्तारी पर पाँच रुपये का पुरस्कार घोषित किया था। क्रांतिकारियों ने भील-भिलालों तथा मडलोइयों से भी कहा कि वे भी विद्रोह में सम्मिलित हो जाए। इस पर अनेकों भील-भिलालें क्रांतिकारियों के साथ आ मिले। जब सन 1858 में अंग्रेजी की सत्ता

खरगोन व बरूड की घटनायें अभी ताजा ही थी। अतः उनकी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए अंग्रेज सैनिक अधिकारी आर.एच. केटिंग ने स्वयं भीमा नायक की शक्ति नष्ट करने का बीड़ा उठाया। वह अपनी फौज के साथ जिसमें 218 सैनिक थे, उस पर्वतीय अंचल की ओर बढ़ा, जहाँ भीमा नायक ने अपनी सत्ता स्थापित कर लिया था। उन दिनों भीलो ने धोली बावली को अपना केन्द्र बना रखा था। इस सूचना को पाकर अंग्रेज सैनिक भील क्रांतिकारियों के केन्द्र धोली बावली को घेर लिया। भील अचानक हुये आक्रमण से घबरा उठे। 60 भीलों ने जमकर मुकाबला किया। वे फायर करते हुए पहाड़ी पर चढ़ते चले गये। अंग्रेजी सैनिक उनका पीछा करने का साहस नहीं जुटा पाई। भीलों के चले जाने के बाद उनके पद चिन्हों को खोजते हुए अंग्रेज पंचनाला जा पहुंचे। उन्होंने रामगढ़ के उत्तर में एक गाँव के समीप पंच बावली नामक स्थान पर अपना शिविर लगाया, भीलों के शिविर से आवाज से केटिंग को संकेत मिला कि भीलों का दल समीप ही अपना डेरा डाले है। अगले दिन उन्हें घेर लिया गया तभी सर्वप्रथम भीलों ने उन पर फायर करके उनके रिसालेदार को घायल कर दिया। बस इसी फायर से दोनों पक्षों में घमासान युद्ध छिड़ गया अंततः भील लोग पहाड़ी की झाड़ियों का सहारा लेकर बच निकले लेकिन चार लोगों को अंग्रेजों ने पकड़ लिया, जिसमें भीमा नायक की वृद्ध माँ भी थी। जिस मंडलेश्वर की जेल में ले जाकर बंद कर दिया और वही उसी जेल में उसकी मौत हो गयी। इस समाचार की सुनकर मंडलेश्वर जेल से कुछ भील क्रांतिकारी भाग गये। बाद में कुछ क्रांतिकारी पकड़ भी गये, जिन्हे बाद में फांसी पर लटका दिया गया। शेष बचे मायाराम, मेहबूब उल्ला, गुलाब खो, जवाहर सिंह, फुन्ता, कईम खो, बहादुर सिंह, नूना देवी, मंजी शाह, सरजुद्दीन खो को राष्ट्रद्रोह के अपराध में काला पानी भेज दिया गया। भारत में ऐसे आदिवासी रणबांकुरों की कमी नहीं है, कि जिन्होंने आजादी की इस लड़ाई में अपने प्राणों की बलि दे दीं। पठारों में बसी जनजातियों ने अप्पा साहब तथा तात्याटोपे जैसे अंग्रेजी हुकूमत के विरोधियों को न केवल शरण दी, बल्कि उन सभी की यथासम्भव सहायता भी की। नवम्बर 1817 को नागपुर के युद्ध के परिणामस्वरूप, पराजय के पश्चात कम्पनी सरकार की योजनास्वरूप अप्पा साहब को गिरफ्तार कर लिया गया तथा उन्हें इलाहाबाद में कड़ी सुरक्षा के बीच जेल में रखा गया। कम्पनी सरकार ने अप्पा साहब को बंदी बनाने वाले व्यक्ति को दो लाख का इनाम और दस हजार रुपये वार्षिक आय वाली जांगीर प्रदान करने की घोषणा की। ''किन्तु इस इनामी गद्दारी के लिए कोई भी व्यक्ति आगे नहीं आया।'' महादेव के पहाड़ियों के गोड़ प्रदेश में अप्पा साहब निरापद थे। इन लोगों की योजना देवगढ़ दर्ग पर कब्जा करने की थी। लेकिन लौड़ी युद्ध में अंग्रेजी फौज ने उन्हें शिकस्त दें दीं। गोंड जमींदारों ने सोनेफर के जागीरदार चैनशाह और प्रतापगढ़ के जागीरंदार राजबा शाह ने केवल अंग्रेजों बैरी के अप्पा साहब के प्रश्रय दिया, वरन उन्हें सैनिक सहयोग देकर कम्पनी सरकार का कोप भी झेला। इस प्रतिरोध के अपराध में कम्पनी सरकार ने दोनों सामंतों को बंदी बनाकर चादाँ जेल भेज दिया। इन दोनों आदिवासी सरदारों को कम्पनी सरकार ने जहर देकर मार डाला। मगर चैन शाह और राजबा शाह स्वामिभक्ति और देशप्रेम की ऐसी इबारत लिख गये, जिसकी शोध आज भी मिटी नहीं है। तातिया भील ने भी अपने शौर्य से अंग्रेजी सरकार को छंकाने में कोई कोर कसर नहीं उठा रखी। इस स्वतन्त्रता संग्राम में अनेक आदिवासी ने अपने प्राणों की बलि देकर, अपने आपको इतिहास के पन्नों में अमर कर दिया।

निष्कर्ष:

इन सत्याग्रह के नायकों में भीली जनजाति के नायक भीमा नायक, तातिया भील, गोड सरदार, विष्णु सिंह और कोरकू नेता गंजनसिंह का उल्लेख लोकगीतों में हुआ है। एक आदिवासी देश-भक्ति गीत में आजादी की लड़ाई का वृतांत इस तरह व्यक्त हुआ है -

पालाड़ी पाल तड़ा रेयो न आना, पालाड़ी पाल तड़ा रेयो ना।
इमारो बेगा दाकी रो बेटा, इमारो बेगा दाकी रो।
गांधी ना मदद ते दाका रो दाई, गांधी न देशो ते दाका रो दाई।
चुड़ो सो सिदो नोरेनी दइि, गांधी ना देशो वे काका रो।
इमारो बेगा दाकी रो बेटा, इमारो बेगा दाकी रो।
नेहरू ना देशो ते दाका रो दाई, नेहरू ना देशो तो दाका।
इमारो बेगा दाकी रो बेटा, इमारो बेगा दाकी रो।
गांधी ना देशो ते दाका रो दाई, इमारो बेगा दाकी रो बेटा।
बेनायो मदद से दाकी रो बेटा, चुड़ो सिदो नोरेनी दायो।
विष्णु ना मदद ते दाका रो दाई, घोड़ा डोंगरी दाका रो दाई।

अर्थात् माँ पुत्र से कहती है - हे! बेटा तुझे कहाँ जाना है। हे! माँ, मुझे आजादी की लड़ाई में गाँधी, नेहरू की मदद करने जाना है। तुम मुझे सीधा (आटा, दाल, नमक) आदि बाँध दो। इसी प्रकार बेटा स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की मदद करने की बात अपनी माँ से कहता है।

****

संदर्भ :-

1.पी.आर. नायडू - 'भारत के आदिवासी (विकास की मान्यताए)', राधा पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 1997
2.हरिराम मीणा - 'आदिवासी लोक की यात्राएँ', भारतीय ज्ञानपीठ इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली, संस्करण 2016
3.रावेन्द्र कुमार साहू - 'उत्तर समय में आदिवासी विमर्श', ए.के. पब्लिकेशन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण 2015
4.महाश्वेता देवी - 'जंगल के दावेदार', राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2016
5.पुष्पेन्द्र शास्त्री - म.प्र. संदेश, अगस्त 1987

पंत के काव्य में मार्क्सवाद, प्रगतिवाद और पर्यावरण चेतना

सीमा सोनी
शोधार्थी हिन्दी
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश -पर्यावरण चेतना का कवि होने के लिए भी सामाजिक एवं मानवीय होना पड़ता है। साहित्य की रचना केवल मनुष्य के लिए की जाती है। नव-नव उन्मेश शालिनी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार कवि ही साहित्य या काव्य की सृष्टि जनहित में, व्यापक मानवता के हित में करता है। कहाँ तक कवि की रचनायें समाज सापेक्ष, मानवता के हित में होकर सामाजिकों, पाठकों में असर व प्रभाव डालती हैं। रचनात्मक बदलाव की दिशा में, यही उसकी प्रासंगिकता की पहचान होती है। पंत जी की दीर्घकालीन काव्य-साधना पर्यावरण चेतना सापेक्ष व्यापक मानवता की पक्षधर हैं। उनमें एक साथ पर्यावरण चेतना प्रकृति चित्रण और मानव जीवन की पक्षधरता अपने व्यापक एवं गहरे रूप में मुखर है, प्रस्तुत है, वर्णित है, उद्घाटित है। पंत के काव्य में शुरू से अन्त तक वैभव विलास का रंगीन रूप नहीं है, बल्कि पर्यावरण चेतना मूलक प्रकृति के नाना रूप-रंग, विविध रूपों-रंगों में रेखांकित हैं, जो पर्यावरण जागरुकता की दिशा में महत्वपूर्ण प्रेरणायें हैं। पंत के काव्य में पर्यावरण चेतना का अपना मौलिक अवदान है वर्तमान परिप्रेक्ष्य में।

मुख्य शब्द - मार्क्सवाद, प्रगतिवाद, पर्यावरण चेतना।

प्रस्तावना -

मार्क्स और मार्क्सवाद पर 20वीं शताब्दी के चौथे, पाँचवे, छठें और सातवें दशक में हिन्दी के अनेक कवियों ने पर्याप्त मात्रा में लिखा है। मार्क्सवाद के तहत सर्वहारा वर्ग की महत्ता है। पूँजीवाद, पूँजीपतियों, मिल-मालिकों, सत्तासीनों पर प्रहार है। कार्लमार्क्स के सामाजिक, आर्थिक विचार मार्क्सवाद के तहत हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, विकासवाद, मूल्यवृद्धि व अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत, मूल सभ्यता के विकास का सिद्धान्त। जगत की उत्पत्ति एवं विकास भौतिक शक्तियों के द्वन्द्व से होता है। दो वस्तुओं एवं शक्तियों के संघर्ष से तीसरी वस्तु की उत्पत्ति होती है। सृष्टि का, जगत का विकास किसी देवी प्रेरणा या कृपा से नहीं बल्कि द्वन्द्वात्मकता से ही होता है। किसी वस्तु की मूल्यवृद्धि के प्रमुख चार अंग हैं - मूल पदार्थ, स्थूल साधन, श्रमिक का श्रम और मूल्य वृद्धि। मूल पदार्थ के तहत पूँजीपतियों द्वारा मसीने, धन जुटाये जाते हैं, जिन पर पूँजीपतियों का व्यय होता है। श्रमिक वर्ग द्वारा अधिकाधिक परिश्रम से वस्तु का उत्पादन होता है। इस उत्पादन कर्म में श्रमिक वर्ग का श्रम और स्वास्थ्य का बलिदान होता है। किन्तु तिजोरियाँ पूँजीपतियों की भरी जाती हैं। लाभ की दशा में उचित बँटवारा न होने के कारण शोषण को प्रोत्साहन मिलता है, जो मानवता के लिए महान अभिशाप है। मार्क्स के अनुसार श्रमिक वर्ग शोषित है और पूँजीपतिवर्ग शोषक है। शोषक और शोषित, अमीर और गरीब दो ही जातियाँ हैं समाज में। पंत कृत युगान्त, युगपथ और युगवाणी की अधिकांश कवितायें मार्क्सवाद व प्रगतिवाद की चेतना से सम्पृक्त हैं। निराला जी ने मार्क्सवाद को अपने अस्तित्व दर्शन के अनुरूप पचाया और रचाया है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', दिनकर, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवियों ने भी मार्क्स की प्रशंसा में रचनायें की है। उस समय समूचे विश्व में मार्क्सवाद हावी एवं प्रभावी था। रूस के विघटन के बाद मार्क्सवाद कमजोर पड़ गया।

विश्लेषण:

पंत कृत 'युगवाणी' भारतीय साम्यवाद की वाणी है। 'युगवाणी' की अनेक कवितायें मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित प्रगतिवादी है। कवि पंत जी के शब्दों में -

''धन्य मार्क्स! चिर तमाच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञानर चच्छु से प्रगट हुए प्रलयंकर।''

पंत जी नें अपनी अनेक कविताओं में मार्क्स व मार्क्सवाद का यशोगान किया है। साम्यवाद ने समाज में, समता, समानता, सामाजिक चेतना को जागृत करने में सहयोग किया है -

''मार्क्सवाद ने दिया जगत को सामूहिक जनतंत्र महान,
भव जीवन के दैन्य दुःख से किया मनुजता का परित्राण।

×××

गाँधीवाद जगत में आया ले मानवता का नव मान,
सत्य अहिंसा से मनुवोचित नव संस्कृति करने निर्माण,
मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गाँधीवाद,
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविववाद।''

मार्क्सवाद के प्रति आकर्षण, उसके दर्शन पर नहीं, बल्कि उसके वैज्ञानिक लोकतंत्र के रूप में आदर्शवाद में हैं जो व्यापक जनहित में है, सर्वहारा वर्ग के हित में है। उपेक्षितों, दलितों के पक्ष में है। मार्क्सवादी चेतना में प्रगतिवाद अवधारणा निहित हैं। हिन्दी का प्रगतिवाद, मार्क्सवाद, गाँधीवाद और भारतीय समाजवाद एवं मानवतावाद से अभिप्रेत है।

''अन्तःमुख अद्वैत पड़ा था,
युग-युग से निष्क्रिय निष्प्राण।
जग में उसे प्रतिष्ठित करने,
दिया साम्य ने वास्तु विधान।''

रूढ़िविरोध, शोषक वर्ग के प्रति न्याय की आकांक्षा, पूँजीपतियों, मिल-मालिकों, शोषकों के प्रति आक्रोश, क्रान्ति की भावना, मार्क्स एवं रूस का गुणगान, मानवतावाद, आशावाद, नारी सम्बन्धी नवीन विचार, नारी जागरण, सामाजिक समस्याओं का चित्रण, सामाजिक न्याय की आकांक्षा मूलक प्रगतिवादी चेतना कवि पंत की प्रगतिवादी कविताओं की विशेषतायें हैं। कला सम्बन्धी नवीन विचारादि।

''रूढ़ि विरोध -

दरत झरो जगत के तीर्ण पत्र,
है सस्तध्वस्त हे शुंष्कशीर्ण
हित-ताप-पीत मधुवातभीत
तुम बीत राग, जड़ पुराचीन।।''

नारी सशक्तिकरण, नारी चेतना, नारी जागरण पर पंत जी की प्रगतिवादी कवितायें मूल्य मूलक हैं, रूढ़ि विरोध, शोषकों पर प्रहार, शोषितों, उपेक्षितों और असहायों के प्रति न्याय की आकांक्षा समाजवादी सामाजिक व्यवस्था की इच्छा प्रगतिवादी चेतना के तहत हैं। पंत जी के काव्य में छायावाद, प्रगतिवाद, गाँधीवाद, मार्क्सवाद, अरविन्दवाद, तो है ही, मानवतावाद शिखर पर हैं -

''मानवता निर्माण करें जन,
चरणमात्र हैं जिसके भूपर,
हृदय स्वर्ग में हो लय जिसका,
मन हो स्वर्ग क्षितिज से ऊपर।
मनुज प्रेम की बाँहों में बँध,
मानवता को अंगीकार करें।

मात्र तुम्हारी करुणा धारा,
मर्त्य धरा के प्रति, धरें।।''

निष्कर्ष:-

पंत के काव्य में विविधवादों के तहत पर्यावरण चेतना, प्रकृतिप्रियता और जीवन के प्रति मानवीय गान गुंजायमान हैं। छायावाद, प्रगतिवाद, गाँधीवाद, मार्क्सवाद, अरविन्दवाद और व्यापक विस्तृत विराट मानवतावाद में प्रकृतिप्रियता और गहरी पर्यावरण चेतना विद्यमान है। पंत जी की दीर्घकालीन काव्यसाधना में अनेक आयाम है। अनेक पड़ाव, अनेक विस्तार, अनेक चढ़ाव और अनेक संवेदनशील पहलू रेखांकित है। पंत के काव्य में प्रकृति, पर्यावरण और जीवन की मानवीय संवेदनायें निहित हैं। पंत सम्पूर्णता के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनमें विविधवाद और पर्यावरण चेतना है।

****

संदर्भ –

1. सुमित्रानन्दन पंत - युगवाणी, पृष्ठ 63
2. सुमित्रानन्दन पंत - युगवाणी, 'साम्यवाद-गाँधीवाद', पृष्ठ 58
3. सुमित्रानन्दन पंत - युगवाणी, पृष्ठ 47
4. सुमित्रानन्दन पंत - युगान्त, पृष्ठ 15
5. सुमित्रानन्दन पंत - युगपथ, पृष्ठ 63

उदय प्रकाश की चयनित कविताओं में नारी संघर्ष का चित्रण

Mrs.K. Kavitha
Ph.D Scholar
Annamalai university
Ph. No.9345549568

भूमिका:-

आवेग, आवेश ,विडम्बना और विलाप से मिलकर उदय प्रकाश की कविता बनती है |उसमे इतना धारदार व्यंग्य है जो करुणा जगाता है | उनकी कविताओं में ठंडापन नहीं आग, चीख और उत्तेजना का संश्लेषण मिलता है | उदय प्रकाश की काव्यशैली पर चित्रकला का भी मिला जुला

प्रभाव है | उदय प्रकाश की कविताओं में झलकते -उभरते स्त्री - चरित्र ऐसे सवालों को उठाते हैं कि सर झककर खामोश रहना पड़ता है | उनकी कविताओं में नारी पर और उनकी समस्याओं पर लिखी गयी कविताएँ माँ ,नींव की ईंट हो तुम दीदी , कवि की पीड़ित ख़ुफ़िया आँखें ,वे यही कहीं हैं ,पंचनामे में जो दर्ज नहीं हैं और औरतें आदि का विश्लेषण करेंगे |नारी जीवन का मूलाधार उसके समान अधिकार को प्राप्त कर लेने में हैं, तभी वह एक विकासपूर्ण तथा गतिशील जीवन जी सकती है। नारी अपनी अस्थित्व के लिये समान अधिकार को पाने की कोशिश कर रही है,जो उसका मूलाधार होता है। प्रधान समाज में नारी की हैसियत ,अधिकार ,अस्मिता तथा अस्थित्व को लेकर ,नारी के सामने कई प्रश्न हैं जिसका हल वह स्वयं ढूंढती रहती है। इतिहास ही साक्षी होती है कि मातृसत्तात्मक समाज में नारी की स्थिति , केंद्र में थी, हाशिए पर नहीं थी। नारी हर रूप में चाहें वह मां हो, बहन हो या पत्नी हो , पुरुष का संस्कार करती है |मां बनकर पुरुष को जन्म देती है, पोषण करती है,वाणी भी प्रदान करती है। हर मनुष्य के जीवन में ,सांस में जुड़ा हुआ ,मिला हुआ और उसके जन्म से मृत्यु तक ,एक ही शब्द होता है | "माँ " कवि अपनी "माँ " शीर्षक कविता में कहते हैं -वही पहला वाक्य

जिसके मध्य में मैं इस धरती पर आया
और जिसमे एक ही शब्द था
फ़क्त एक व्यंजन और उसी में विलीन होता एक स्वर
बिना किसी विराम के सौरमंडल के अनंत तक जाता हुआ

उनके यह पद का तात्पर्य यह होता है कि माँ यह एक शब्द पूरी दुनिया में इसकी ध्वनी गूँज उठती है | कवि ने अपनी बुरी स्थितियों में यह अनुभव किया है कि हमेशा एक हाथ उनके साथ रहता है ,वह होता है उनकी माँ का |

उनके शब्दों में देखेंगे -

अचरज है कि आज तक
जब भी घिरता हूँ मैं अँधेरे और
अकेलापन में अपनी जर्जरता के साथ
हर बार पता नहीं कहाँ से चला आता है वही पहला वाक्य
मेरी ओर अपने व्याकुल हाथ बढ़ाता हुआ

कवि को यह बात और अचरज में डालता है कि यह एक शब्द दुनिया की सभी भाषाओं के शब्दकोशों में मौजूद है | पर किसी भी व्याकरण ने क्यों इसको एक वाक्य का दर्ज़ा नहीं दिया था ? हम से भी यह सवाल करते हैं -उसे

समूचे वाक्य का दर्ज़ा नहीं दिया था
आप बताएँगे क्यों ?
और यह भी कि आखिर आप किस वाक्य के बीचोंबीच
अपने शहर या पृथ्वी पर आये थे ?

हाँ , वह एक शब्द तो नहीं , अपने में एक पूरा वाक्य होता है | वह एक ही ध्वनि सारी दुनिया की नींव होती है |
असंख्य क्रियापदों ,कर्ताओं
विश्लेषणों और कालवाची सहायक क्रियाओं वाले
श्लेष और दुर्गम वक्रोक्तियों से लदे-फदे वाक्य
जिनसे चलता है सारा कारोबार
व्यापार और सरकार

कवि की "नींव के ईंट हो तुम दीदी " कविता है जिसमे दीदी का स्थान उनकी जिंदगी में कैसा होता है ? कवि ने अपनी दीदी को पीपल का पेड़ ,ढिबरी ,चट्टान माना है |प्रतीक योजना का प्रयोग इसमें पाया जाता है -

"पीपल होती तुम
पीपल, दीदी
पिछवाड़े का ,तो
तुम्हारी खूब घनी - हरी टहनियों में
हारिल हम
बसेरा लेते |

हारिल कहने का तात्पर्य शायद यह होता है -सब लड़कियों का घर कही नहीं होता |जैसे हारिल का घोंसला कहीं नहीं होता |इस कड़वी सच्चाई पर प्रकाश डाला है कवि ने |दीदी को फिर कवि ने ढिबरी में पाया है |

ढिबरी थीं दीदी तुम
हमारे बचपन की
अचार का तलछट तेल
अपनी कपास की बाती में सोखकर
हमने सीखे थे पहले - पहल अक्षर

अपने बचपन , जिसे वापस नहीं पा सकते पर याद दिला सकते हैं , उसे हम कवि की पंक्तियों द्वारा अवश्य महसूस कर सकते हैं |उनसे खोये गए बचपन , खोयी गयी बचपन की खिलौने ,गेंदें कहीं भी न मिल सकती ,पर याद में बनी रहती |अपनी दीदी की शादी के बाद ,उसकी जगह तो बदल गयी पर वहीं पीपल होती ,ढिबरी होती ,किसी और के यहाँ की नींव की ईंट बन गयी |
कवि के शब्दों में -

दीदी ,अब
अपने दूसरे घर की
नींव की ईंट हुयी तुम तो
तुम्हारी नयी दुनिया में
होंगी कही हमारी खोयी हुई गेंदें
होंगे कहीं हमारे पतंग और खिलौने
अब तो ढिबरी हुई तुम
अन्य आँगन की
कोई और बचपन
चीन्हता होगा पहले पहल अक्षर

हमेशा नारी ही बन जाती हर जगह में नींव की ईंट ,मायके में, ससुराल में ,सभी जगहों की नींव वही होती है पर उसका घर कही नहीं होता | शादी के बाद मायके जाते समय भी मेहमान जैसा ही जा सकती है | कवि कहते हैं -

हमारा क्या ,दिदिया री |
हारिल हैं हम तो
आएंगे बरस - दो बरस में कभी
दो- चार दिन
मेहमान सा ठहरकर
फिर उड़ लेंगे कहीं और |
घोंसले नहीं बनाये हमने
बेस नहीं आज तक |

कवि के कथन से यह सच्चाई झलकती है कि औरतें ही घर की नींव की ईंट होती हैं | नींव की ज़रुरत ज़्यादा होने पर बाहर दिखाई नहीं देती | उसकी मौजूदगी अंदर ही होती है जिसके बिना दृढ़ खड़े होना असंभव है और साथ ही यह भी महसूस होता है कि यह कविता लिखते समय कवि ने अपने को शायद स्त्री ही मान लिया होगा | क्योंकि कई जगहों में इसकी झलक मिलती है |

उदय प्रकाश की "कवि की पीड़ित ख़ुफ़िया आँखें , पंचनामे में दर्ज़ नहीं ,औरतें आदि कविताओं में नारी की पीड़ा ,दर्द ,उसपर होनेवाले अत्याचार आदि का चित्रण सरल लेकिन तीखे शब्दों में किया है |कवि की पीड़ित ख़ुफ़िया आँखें कविता में व्यक्त की गयी नारी की बुरी स्थिति पर नज़र डालेंगे |एक स्त्री का मान बंग करके उसकी हत्या भी कुछ ही क्षणों में हो जाती है | पर उन अत्याचारों पर मुकदमा दो शदाब्दियों तक चलता है |स्त्री पर अत्याचार करनेवाले पापियों का उचित दंड देने में इतनी देर होती है | जब समाज में न्याय पर ध्यान न दिया जाता ,कुरूर ,अपराधियों का दंड नहीं दिया जाता ,न्याय की बात नहीं सुनायी जाती है तो उपेक्षित मन लिए कवि ने अपना कान पूरी धरती पर लगाता है | तब कवि की पीड़ित ,दर्द भरी आत्मा की आँखें ख़ुफ़िया की भांति हर अँधेरे में सुलगती हुई दिखाई देती है | कवि के शब्दों में सुनिए -

जब नहीं सुनता है कोई किसी की बात तो एक उपेक्षित कवि
अपने कान समूची पृथ्वी पर लगाता है
हर अँधेरे में सुलगती हैं उसकी पीड़ित आत्मा की ख़ुफ़िया आँखें

अपनी ज़रूरत की पूर्ती के लिए काम करनेवाली स्त्रियों का मानभंग करनेवालों और उन स्त्रियों का दुरुपयोग करनेवालों पर अपना कोप इन व्यंग्य भरे शब्दों में प्रकट करते हैं -

खैनी ,राई ,अरहर और गुड़ के लिए
अपने कपडे क्यों नहीं उतारती मधु सप्रे और अंजलि कपूर

इतनी कठोर कुरूर समाज यह होती है कि जोर जोर से हँसनेवाले एक स्त्री की अगले पल अचानक होती है | कवि की आत्मा कहती है

रात भर कई सालों से गिरती है आकाश से सिसकियाँ और खून
स्वप्न चुभते हैं उसके तलवों में जो भी इस समाज से गुज़रता है
इस कविता के अंत में कवि यह बात कहकर हमें रुलाते है , सुनिए
कोई विशवास होता है हर बार, जिसका घात होता है हर बार
सब लोग यह सब जानते हैं पर खामोशी ही लाजिमी है
जो यथार्थ को व्यक्त करता है
वर मार दिया जाता है अफवाहों से

यह सच ही होता है कि जो सच्चाई के पक्ष में खड़ा होता है उसपर झठा आरोप ही किया जाता है |कवि से लिखी गयी और एक कविता होती है " वे यहीं कहीं हैं "(१ जनवरी ,१९९० में सफ़दर हाशमी की हत्या की स्मृति में लिखी गयी कविता है)जिस औरत की हत्या की गयी है ,वे कहीं नहीं गयी , वे यहीं कहीं हैं ,उनकेलिए क्यों रोना है |अपनी अकाल मृत्यु के कारण उनकी तड़पती आत्मा ,इधर ही घूमती है |उनकी उपस्थिति हर जगह महसूस की जाती है |

वे अब भी जीवित है |
मरी नहीं | वे यहीं कहीं हैं |
उनकेलिए रोना नहीं |
वे यहीं कहीं हैं
किसी दोस्त के गप्प लड़ा रहे हैं

कोई लड़की अपनी नींद में उनके सपने देख रही है वे किसी से छुपकर किसी से मिलने गए है उनके लिए आंसू नासमझी हैं उनके लिए रोना नहीं कवि के कथन का तात्पर्य यह होता है वे अपने सपने अधूरे ऐसे नहीं छोड़ेंगे ,किसी अनजान लड़की के माध्यम अपना स्वप्न साकार कर दिखाएंगे |

हाँ ,वे कहीं नहीं गयी
वे यहीं कहीं हैं
उनसे छीनी गयी उनकी अधूरी जिंदगी को इधर कहीं किसी चेहरे
के पीछे रहते हुए बिताएंगे |
उनके लिए क्यों रोना है
रोना नहीं ,वे यहीं कहीं है |
वे जेड हैं हज़ारों साल पुरानी
वे पानी के सोते हैं
धरती के भीतर भीतर पूरी पृथ्वी और पाताल तक वे रेंग रहे हैं
वे अपने काम में लगे हैं जबकि हत्यारे खुश हैं कि
हमने उन्हें ख़त्म कर डाला है |
पर वे मरी नहीं
यहीं कहीं है |
उनके लिए रोना नहीं |

कवि की और एक कविता होती है "पंचनामे में जो दर्ज नहीं है | औरत की पवित्रता पर संदेह करके उनकी ज़िंदगी को नारकीय बनानेवालों पर अपनी कविता के द्वारा कठोर आघात किया है कवि ने | कवि के शब्दों में देखेंगे |

सुबह - सुबह चादरों और उनके कपड़ों में
रात के रक्तपात के धब्बों से अनुमान लगाया गया
वे कितनी अक्षत और निष्कलंक थीं |
हर रात संदेह की आग से वे बिना जले निकल आतीं |
अक्सर उनके सतीत्व पर जांच होती जाती है |'

ससुराल में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है | कभी कभी वह समस्या उन्हें मृत्यु तक खींचती हैं | वे इतनी झठी होती हैं कि अपनी चिट्ठियों में लिखा करती थीं कि हम बहुत सुखी हैं |उनकी स्थिति शादी के पहले और बाद कवि के शब्दों में सुनिए -

वे तो पिता द्वारा वहां गमले में रोप दी गयी तुलसी का पौधा थीं
वे किसी जर्जर नाव की सड़ी-गली कमज़ोर पतवारें थीं
जिन्हें कोई स्वार्थी और क्रूर मल्लाह
समुद्र में पीटता है

जीवित रहते समय उसके चेहरे में मुस्कराहट की छाया न पडी, पर मृत्यु के बाद एक स्वंतंत्र सी हंसी दिखाई देती है |कवि पूछते हैं -

यह तथ्य पंचनामे में पुलिस दर्ज़ नहीं करती
लेकिन हर कोई इसे देख सकता है
कि ठीक मृत्यु के बाद
एक बहुत सघन
एक बहुत स्वंतंत्र -सी हंसी उनके होंठों पर आती है
उनकी हत्या के बाद,पुलिस उनके शव के इर्द -गिर्द
उनके शरीर पर पायी गयी
चीज़ों और चोटों की सूची में इस हंसी का
ब्यौरा अक्सर छूट जाता है

हाँ ,उनकी सभी चीज़ो की सूची में इस मुस्कराहट का विवरण क्यों न दर्ज़ किया गया पुलिस से |कवि ने अपनी "औरतें " नामक कविता में चर्चित नारी संघर्ष पर ध्यान देंगे -

एक औरत जो तेज़ाब से जल गयी हैं खुश है कि बच गयी है
उसकी दाई आँख
एक औरत हार कर कहती है - तुम जो जी आये ,कर ले मेरे साथ
बस मुझे किसी तरह जी लेने दो
एक औरत नाक से बहता खून पोंछती हुई बोलती है
कसम कहती हूँ ,मेरे अतीत में कहीं नहीं था प्यार
अस्पताल में हज़ार प्रतिशत जली हुई औरत का कोयल दर्ज़
कराता है अपना मृत्यु-पूर्व बयान कि उसे नहीं जलाया किसी ने
उसके अलावा बाकी हर कोई है निर्दोष
गलती से उसके ही हाथों फूट गयी किस्मत और फैट गया स्टोव

कवि ने अपनी "औरतें " नामक कविता में चर्चित नारी संघर्ष पर ध्यान देंगे -

एक औरत जो तेज़ाब से जल गयी हैं खुश है कि बच गयी है
उसकी दाई आँख
एक औरत हार कर कहती है - तुम जो जी आये ,कर ले मेरे साथ
बस मुझे किसी तरह जी लेने दो
एक औरत नाक से बहता खून पोंछती हुई बोलती है
कसम कहती हूँ ,मेरे अतीत में कहीं नहीं था प्यार
अस्पताल में हज़ार प्रतिशत जली हुई औरत का कोयला दर्ज़
कराता है अपना मृत्यु-पूर्व बयान कि उसे नहीं जलाया किसी ने
उसके अलावा बाकी हर कोई है निर्दोष
गलती से उसके ही हाथों फूट गयी किस्मत और फट गया स्टोव

इस दुनिया हर औरत की पीड़ा का चित्रण किया है कवि ने इस कविता में| आख़िरी पंक्तियाँ सब के मन बेबस बनाती हैं |

हज़ारों -लाखों छुपती हैं गर्भ के अँधेरे में
इस दुनिया में जन्म लेने से इंकार करती हुई
वहां भी खोज लेती हैं उन्हें भेड़िया ध्वनि तरंगें
वहां भी ,भ्रूण में उतरती है हत्यारी कटार|

उदयप्रकाश की इन कविताओं में नारी पर होने अत्याचारों से पीड़ित कवि के मन के आवेग,आवेश ,विडम्बना और विलाप आदि भावनाएं उभर कर आई हैं | किसी खोयी हुई चीज़ की तलाश है उनकी कविताएँ| इस दुनिया की हर औरत की पीड़ा का चित्रण किया है कवि ने इस कविता में|

निष्कर्ष:-

स्त्रियों की समस्याओं को कई लेखकों ने गहरा अध्ययन किया | कुछ लेखकों ने आंदोलित भावना के साथ नज़र डाली है | कई रचनाकारों ने अपनी समस्या ही समझकर देखा | कुछ एक रचनाकार उन समस्याओं का समाधान ढूंढ निकालने की कोशिश भी कर रहे हैं | हमारे कवि उदय प्रकाश अपनी इन कविताओं के माध्यम नारी जाति पर होनेवाली अत्याचारों का वर्णन बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है | उनकी लेखनी का प्रभाव पाठकों के मन पर अवश्य पड़ ही जाता है |

****

सन्दर्भ सूची :-

मूल ग्रंथ
1. उदय प्रकाश
पचास कवितायें - नयी सदी के लिए चयन वाणी प्रकाशन ४६९५, २१- ए दरियागंज , नयी दिल्ली ११० ००२ ISBN - ९७८-९३-५०००-७२४-२
प्रथम संस्करण २०१२ आवृति २०१९
2. कथा साहित्य में नारी विमर्श
डॉ.शोभा निम्बालकर -पवार
मानसी पुब्लिकेशन्स , दिल्ली ISBN - 9788189559168
3. हम सभ्य औरतें
मनीषा जगदीश भारद्ध सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली ISBN - ८१-७१३८-०२३-9

भारतीय लोक संस्कृति : समकालीन परिवर्तन

अमित कुमार सिंह
असि. प्रो. समाजशास्त्र
गोस्वामी तुलसीदास राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कर्वी, चित्रकूट

सारांश –

भले ही लोक-संस्कृति मानव समाज की संस्कृति है पर यह अक्सर यह सभ्यता से दूर मानव के प्रारम्भिक जीवन, व्यवहारों और क्रियाओं का बोध कराती है। यह सहज, सीधी एवं प्राकृतिक धारा के सदृश, बनावटों एवं साज-सज्जा से दूर रहने वाली संस्कृति का परिचायक है। इस संस्कृति में ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक देवी-देवता ऐसे है जिनके नाम विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न है। पर उनका स्वरूप तथा विश्वास सभी मानने वालों के लिए एक सा दिखाई पड़ता है। लोक संस्कृति के अन्तर्गत आने वाले लोक साहित्य, लोक गीत, लोक वाद्य , लोक मिथक , नेरेटिव ,कविताएँ, मुहावरे, कहावतें, विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों में एक दूसरे से कुछ भिन्न है लेकिन उनका कथानक लगभग समान होता है। जो लोक-संस्कृति में वृहत परम्परा की प्रवृत्ति को दर्शाया करती है। लोक संस्कृति चरित्र निर्माण का कार्य सामाजिक नियंत्रण और सामाजिक दबाव द्वारा करती है। साथ ही यह कार्य उपदेशों ,प्रेरक प्रसंगो,कहानियों ,मिथकों के माध्यम से बुजुर्गों और वृद्धजनों द्वारा किया जाता है। लोक-संस्कृति में लोक कला का महत्वपूर्ण स्थान है, पर वर्तमान समय में चलचित्रों, टेलीविजन तथा रेडियों के प्रभाव से लोक कला परम्परागत लोक जीवन से भिन्न हो रही है। अब लोक कला को एक सामूहिक विशेषता की जगह व्यक्तिगत कुशलता माना जाने लगा है। लोक-संस्कृति की परिवर्तनशीलता से बहुत से व्यक्तियों की यह धारणा प्रबल होने लगी है कि अब यह उनके जीवन के लिये अधिक उपयोगी नही रह गयी है। लेकिन परिवर्तन की वर्तमान प्रक्रिया को देखने से भी अभी ये नही लगता है कि लोक-संस्कृति को भव विशुद्व रूप से अतीत की संस्कृति है।

मुख्य शब्द – लोक साहित्य, लोक कला, लोक रंग ,लोक मिथक, नेरेटिव, परिवर्तन

लोक संस्कृति शब्द का निर्माण दो शब्दों से मिलकर हुआ है। लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य ही नही बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पुस्तकें नही है। लोक संस्कृति का अर्थ ऐसी संस्कृति के लिये ध्वनित होता है, जो शिष्ट सभ्य वर्ग की संस्कृति से भिन्न है। यह असभ्य, अशिक्षित, ग्राम्य आदि प्रकार के जन समूहों की संस्कृति का बोध कराता है। लोक सस्कृति का अर्थ ऐसी सहज, सीधी एवं प्राकृतिक धारा के सदृश, बनावटों एवं साज-सज्जा से दूर रहने वाली संस्कृति का परिचायक है जो उस मानव समाज की संस्कृति है जो सभ्यता से दूर मानव के प्रारम्भिक जीवन और क्रियाओं का बोध कराती है। लोक-संस्कृति से सम्बन्धित कला, गीत, संगीत, नृत्य, नाटक आदि का उपयोग नगरीय संस्कृति की भांति व्यावसायिक आधार पर नही किया जाता, वरन इसका उपयोग सभी लोगों के लिये निःशुल्क उपलब्ध होता है। इसका उद्देश्य मनोरंजन प्रदान करना एवं ग्रामीण जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। लोक-संस्कृति के दर्शन हमें लघु समुदायों एवं कृषक समाजों में होते है। ये ही उनके गढ़ एवं कार्य क्षेत्र हैं न कि नगरीय समाज । लोक-संस्कृति का तात्पर्य परम्पराओं पर आधारित जीवन एक सामान्य ढंग से है। इसका तात्पर्य है कि लोक-संस्कृति के अन्तर्गत सभी धार्मिक विश्वासो, धार्मिक आचरण, कर्मकाण्डों की पूर्ति ज्ञान व्यवहार के तरीके लोक कला गाथाएँ तथा चिन्तन किसी न किसी धर्म ग्रन्थ अथवा स्थानीय परम्पराओं से प्रभावित होते है। ये विशेषताएं मौखिक परम्पराओं के रूप में एक पीढी से दूसरी को पीढी हस्तान्तरित होती है।

लोक संस्कृति का क्षेत्र अत्यंत अधिक एवं वृहत है, इसके अंतर्गत सामान्यतः ग्रामीण और लोक समुदायों के विश्वास, रीति रिवाज, खानपान, संस्कार, प्रथाएं, रहन-सहन एवं आचार-विचार, तीज-त्योहार, मिथक, लोक कथाएँ, लोक साहित्य आते हैं। प्रकृति की चेतन तथा जड़ जगत के विषय में तथा उनके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में, जादू टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन व अपशकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में, अनेक अन्य परंपराएं इसके भीतर समाविष्ट होती हैं। इसके साथ ही विवाह, उत्तराधिकार, बाल तथा पूर्ण जीवन के रीति-रिवाज, अनुष्ठान ,त्योहार, युद्ध, आखेट, पशुपालन, मत्स्य, व्यवसाय आदि विषयों के विधि विधान इसके अंतर्गत आते हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक संपन्नता के अंतर्गत जो भी वस्तुएँ हो सकती हैं वह सभी लोक संस्कृति की क्षेत्र में आती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि लोक संस्कृति का विस्तार क्षेत्र अत्यंत व्यापक और एवं विस्तृत है, यह मानव जीवन के समस्त अंगों से संबंधित होने के साथ ही लोक साहित्य को भी आत्मसात किए हुए हैं ।लोक गीत देश की लोक संस्कृति के अक्षय स्रोत है। लोक गीतों की सहायता से ग्रामीण जीवन और संस्कृति को आसानी से समझा जा सकता है। लोक गीत लघु समुदाओं, कृषक एवं ग्रामीण सामाजिक जीवन की तस्वीर प्रस्तुत करते है। साथ ही लोक-संस्कृति में लोकोक्तियां या कहावतों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये मानवीय ज्ञान के घनीभूत स्रोत है जिनसे बुद्वि और अनुभव की किरणों से फुटने वाली ज्योति मिलती है। और लोक-संस्कृति में कथाओं को महत्वपूर्ण स्थान होता है, कथाओं की सहायता से मिथकों का ज्ञान होता है। तत्कालीन समाज और जीवन का ज्ञान, मानव सभ्यता के विकास क्रम का ज्ञान, धार्मिक परम्पराओं की उत्पत्ति और विकास का ज्ञान, सृष्टि की उत्पत्ति और विकास का ज्ञान तथा आश्चर्यजनक सामाजिक घटनाओं तथा उनके हल का ज्ञान कथाओं और मिथकों द्वारा होता है।

प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से ही इस देश में संस्कृति की दो पृथक धाराएं प्रवाहित हो रही थी जिनमें एक शिष्ट संस्कृति थी और दूसरी लोक संस्कृति। शिष्ट संस्कृति से आशय उस अभिजात वर्ग की संस्कृति से है जो बौद्धिक विकास की पराकाष्ठा पर पहुंच गई है। यह वर्ग अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी तथा पथ प्रदर्शक था, तथा जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद और शास्त्र थे। लोक संस्कृति से अभिप्राय जनसाधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती है। लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वास व अनुष्ठानों तथा क्रियाकलापों की पूर्व परीक्षा के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है।

लोक संस्कृति की व्यापकता -

लोक-संस्कृति से सम्बद्व एक परम्परागत धारणा यह थी कि यह संस्कृति स्थानीय परम्पराओं से निर्मित होती है। इसलिये इसमें परिवर्तन की सम्भावना बहुत कम है। प्रत्येक गाँव में कुछ देवी देवता ऐसे पाये जाते है जो विशेष रूप से

उसी ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित होते है। परन्तु यदि तुलनात्मक आधार पर उनका विश्लेषण किया जाये तो सम्पूर्ण भारत में ग्रामीणों के विश्वासों, कार्य, प्रणालियों तथा अनुष्ठानों में एक समानता देखने को मिलती है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पाये जाने वाले अनेक देवी-देवता ऐसे है जिनके नाम विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न है। लेकिन उनका स्वरूप तथा उनके प्रति ग्रामीणों के विश्वास सभी एक से है। उदाहरण के लिये सभी गाँवों में खेतो के संरक्षक देवता की पूजा की जाती है। यद्यपि उनके नामों में कुछ भिन्नता देखने को मिलती है। उसी प्रकार लोक साहित्य के अन्तर्गत आने वाले लोक गीत, कविताएँ, मुहावरे, कहावतें विभिन्न भाषा, भाषी क्षेत्रों में एक दूसरे से कुछ भिन्न है लेकिन उनका कथानक लगभग समान होता है। यह स्थिति लोक-संस्कृति में वृहत परम्परा की प्रवृत्ति को स्पष्ट करती है।

लोक- संस्कृति की विशेषताएँ-

लोक संस्कृति का स्वाभाविक विकास होने के कारण की इसकी संरचना का स्वरूप अलिखित होता है इसका कारण इसकी विषय सामग्री ग्रामीण जीवन और परिस्थितियों से सम्बन्धित होती है। साथ ही यह सामाजिक विरासत की भांति एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरित होती रहती है। लोक संस्कृति मौखिक सांस्कृतिक परम्परा है क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से पुस्तकों पर आधारित नही है , इससे संबन्धित तत्व, धर्म, तत्व-मीमांसा, साहित्य और संगीत आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने की आवश्यकता नही पड़ती।

मानव जीवन के व्यवहारिक स्वरूप को लोक संस्कृति के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। लोक-संस्कृति में व्यक्ति के स्थान पर सामूहिक जीवन और सामूहिक क्रियाओं का महत्व प्रदान किया जाता है। लोक संस्कृति परिवार प्रधान होती है इसमें परिवारात्मकता पायी जाती है इसमें परिवार की झांकी को स्पष्टतः देखा जा सकता है। लोक संस्कृति में जीवन और संस्कृति एक गाड़ी के दो पहिये की भांति होतें है। न जीवन को संस्कृति से अलग किया जा सकता है और न ही संस्कृति को जीवन अभाव में जाना जा सकता है। लोक संस्कृति में कला का स्वरूप भी सामूहिक होने के साथ भिन्न -भिन्न तत्व समाहित रहते है। जो कला के बजाय सामूहिक जीवन और मनोरंजन के लिये होती है। इसमें कला स्वरूप व्यापारिक नही होता। लोक संस्कृति की प्रौद्योगिकी की प्रकृति अत्यन्त सरल एवं परम्परात्मक होने के साथ तकनीकी में कोई खास परिवर्तन नही होता। सरलता के कारण इसमें प्रौद्योगिकी का आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। समूह-नृत्य में भाग लेने वाले स्वयं ही गीत का रचना करते है, स्वयं ही उसे गाते है और साथ ही नृत्य भी करते है। कलाकार और दर्शक गण वे स्वयं ही होते है। लोक-संस्कृति में ज्ञान और कला के क्षेत्र में व्यवसायीकरण की सम्भावना बहुत कम ही रही है।

लोक-संस्कृति से सम्बन्धित कला, गीत, संगीत, नृत्य, नाटक आदि का उपयोग नगरीय संस्कृति की भांति व्यावसायिक आधार पर नही किया जाता, वरन इसका उपयोग सभी लोगों के लिये निःशुल्क उपलब्ध होता है। इसका उद्देश्य मनोरंजन प्रदान करना एवं ग्रामीण जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। लोक-संस्कृति के दर्शन हमें लघु समुदायों एवं कृषक समाजों में होते है। ये ही उनके गढ़ एवं कार्य क्षेत्र है न कि नगरीय समाज। लोक-संस्कृति के अन्तर्गत वे सभी देवी-देवता, धार्मिक संगीत, कहावतें, मुहावरे, लोक गाथाएं ,नाटक आदि आते है। जिनका स्रोत प्रत्यक्ष रूप में कोई धर्म-ग्रन्थ या कोई अन्य पुस्तक नही होते, यह मौखिक रूप से ही पीढी दर पीढी हस्तान्तरित होते रहते है। ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक ऐसे देवी देवताओं की पूजा की जाती है, और कई ऐसे त्यौहार मनाये जाते है जिनके फैलाव का क्षेत्र सम्पूर्ण भारत है तथा जिनका उद्गम कोई न कोई अखिल भारतीय धर्म ग्रन्थ है।

लोक संस्कृति का महत्व-

लोक-संस्कृति मानव जीवन में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। लोक-संस्कृति जहाँ तक एक ओर हमें अपनी विरासत से अवगत कराती है वही दूसरी ओर हमारे भविष्य का भी निर्धारण कराती है। लोक-संस्कृति पर हमारा भूत, वर्तमान और भविष्य अन्त सम्बन्धित है। लोक-संस्कृति हमारी सभ्यता का ऐसा स्रोत है जो कभी समाप्त नही हो सकता है। लोक संस्कृति किसी भी देश की सभ्यता का दर्पण है अर्थात किसी देश की निवासियों की लोक संस्कृति सभी भली-भांति जानी जा सकती है जब उनकी सभ्यता का पूरा ज्ञान हो। सभ्यता के माध्यम से ही लोक संस्कृति का पूर्ण ज्ञान हो सकता। लोक संस्कृति का कार्य समाज में प्रचलित सभ्यता तथा विभिन्न विधि विधान एवं संस्थाओं को उचित अर्थ और स्वरूप प्रदान करना है। समाज में रहने वाले मनुष्य अनेक प्रकार के धार्मिक कार्य करते हैं। किसी देश के मिथक उस देश की सांस्कृतिक परंपरा को बल प्रदान करते हैं। इसी प्रकार से जादू-टोना, धार्मिक अनुष्ठान आदि सामाजिक संरचना के रूप में व्यावहारिके मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं। लोक संस्कृति शिक्षा के माध्यम से चरित्र निर्माण का कार्य भी करती है, साथ ही यह सामाजिक नियंत्रण और सामाजिक दबाव को भी डालने का प्रयास करती है, यदि कोई व्यक्ति समाज के विरुद्ध कोई कार्य करता है तो उसे अनेक उपदेश, कहानी सुना कर सही रास्ते पर लाने का प्रयास किया जाता है।

लोक संस्कृति में परिवर्तन-

वर्तमान युग में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया, पाश्चात्य शिक्षा तथा वैज्ञानिक प्रगति के प्रभाव से ग्रामीण जीवन के सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्षों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। कुछ समय पूर्व तक यह धारणा थी कि लोक-संस्कृति की प्रकृति रूढिवादी और परिवर्तन विरोधी होती है, इसलिए इस संस्कृति में साधारणतयः कोई परिवर्तन उत्पन्न नही हो सकता। पर वर्तमान समय में ऐसी धारणाएँ गलत प्रमाणित होने लगी है। क्योकिं गाँवों की आर्थिक तथा सामाजिक संरचना बदलने के साथ ही लोगो की मनोवृत्तियों तथा सम्पर्क के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। इसका स्वाभाविक परिणाम लोक-संस्कृति में होने वाले परिवर्तन के रूप में हमारे सामने आ रहा है। आज अभिजात वर्ग की तर्कशील और परिवर्तनशील संस्कृति ने लोक-संस्कृति को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित किया। ग्रामीण क्षेत्रों में सैकड़ों वर्षो से लोक-संस्कृति तथा अभिजात संस्कृति के बीच अंतःक्रिया चलती रही है। और इन दोनों ने ही एक दूसरे से प्रभावित हुई और एक दूसरे को प्रभावित किया है। इस अंतःक्रिया के फलस्वरूप लोक-संस्कृति ने अभिजात संस्कृति के अनेक सांस्कृतिक तत्वों को ग्रहण किया है। और कभी कभी इनको अपने में आत्मसात किया है। इसी का परिणाम है कि संगीत के क्षेत्र में आज लोक-संस्कृति से सम्बद्व अनेक रागों को परिष्कृत करके अभिजात वर्ग को संस्कृति से सम्बन्धित रागों के रूप में परिवर्तित कर लिया गया है। नृत्य, कला और शिष्टाचार के क्षेत्र में भी लोक-संस्कृति निरन्तर अभिजात वर्ग की संस्कृति से प्रभावित हो रही है। अत्यार्धिक प्राचीन काल से ही लोक-संस्कृति के अन्तर्गत लोक कला का महत्वपूर्ण स्थान रहा है वर्तमान समय में चलचित्रों टेलीविजन तथा रेडियों के प्रभाव से लोक कला परम्परागत लोक जीवन से भिन्न हो रही है। आज लोक कला को एक सामूहिक विशेषता के रूप में न देखकर व्यक्तिगत कुशलता के रूप में

देखा जाने लगा है । इसी का परिणाम है कि लोक कला व्यक्तिगत भावनाओं से अधिक सम्बद्ध है तथा उसके लोक जीवन का प्रभाव कम होता जा रहा है । इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी निर्विवाद है कि आज लोक-संस्कृति के अन्तर्गत सहित्य, संगीत तथा मनोरंजन के स्वरूप में व्यवसायिकता के गुण उत्पन्न हो गये है । कला और संगीत का उद्देश्य प्राथमिक रूप से धनोपार्जन करना है जिसके लिये लोक कलाकार अपने अपने संगठन बनाकर स्थान स्थान पर भ्रमण करते है । और लोक गीतों तथा लोक नृत्यों का प्रदर्शन करते है ।अब लोक कलाकारों को फिल्मों और टेलीविज़न की दुनिया में मंच मिलने लगा है जिससे इनकी लोक काला अब स्थानीयता से निकल कर सार्वभौमिक हो रही है ।

लोक-संस्कृति में होने वाले परिवर्तन इस दृष्टिकोण से चिंताजनक है कि वर्तमान युग में इसके अन्तर्गत जन सामान्य का सहभाग निरन्तर कम होता जा रहा है। आधुनिकीकरण तथा नगरीकरण के प्रभाव से लोक जीवन नगरीय संस्कृति को अपना आदर्श मानने लगा है । ग्रामों में बहुत से व्यक्तियों की यह धारणा प्रबल होने लगी है कि उनकी लोक-संस्कृति इस सीमा तक परिवर्तित हो गयी है । कि अब इसे अनेक जीवन के लिये अधिक उपयोगी नही कहा जा सकता । यह सम्भव है कि वर्तमान परिवर्तन बदलती हुई रूचियों और मनोवृत्तियों के अनुरूप हो लेकिन यह भी सच है कि इन परिवर्तनों के फलस्वरूप लोक जीवन में सांस्कृतिक विघटन की एक नई समस्या उत्पन्न हो गई । इसके पश्चात् भी यह ध्यान रखना होगा कि लोक-संस्कृति में उत्पन्न परिवर्तन अभी इतने सीमित है कि इनके आधार पर ग्रामीण समुदाय लोक जीवन को पूर्णतया विघटित नही कहा जा सकता। यद्यपि इन परिवर्तनों में तीव्रता आने पर लोक जीवन में विघटन के तत्व अधिक प्रभाव पूर्ण बन सकते है । इसी आधार पर अक्सर यह निष्कर्ष दिया जाता है कि कुछ समय पूर्व लोक-संस्कृति अतीत की संस्कृति थी लेकिन परिवर्तन की वर्तमान प्रक्रिया को देखने से यह स्पष्ट होता है कि लोक-संस्कृति को भव विशुद्व रूप से अतीत की संस्कृति नही कहा जा सकता ।

निष्कर्ष-

लोक- संस्कृति वह महत्वपूर्ण पर्यावरण है जो किसी भी लघु समुदाय तथा कृषक समाज की जीवन विधि को सुरक्षित बनाये रखता है । इस दृष्टिकोण से लघु समुदाय, कृषक समाज तथा लोक संस्कृति को पारस्परिक निर्भरता के दृष्टिकोण से समझना ही उचित होगा । इनमें से किसी भी एक में उत्पन्न होने वाला परिवर्तन दूसरे को निश्चित रूप से प्रभावित करता है । पर इन परिवर्तनों के बावजूद भी लोक –संस्कृति बाजरवाद की नवीन प्रवृतियों को ग्रहण करते हुई दिखाई पड़ रही है । शायद यह समय की मांग या आजीविका के महगें होते साधनों के साथ व्यावसायिकता का भूमंडलीकरण होना है । इन परिवर्तनों के लिए एक कारक प्रभावी या सम्पूर्ण नही है । पर यह ध्यान रखने की महती आवश्यकता है कि बाजारीकरण के अंधाधुन इस आधुनिक दौर में लोक संस्कृति का मूल स्वरूप ही न नष्ट हो जाए ।

****

संदर्भ सूची-

1 पाण्डे गोविंद चन्द्र, भारतीय समाज तात्विक और ऐतिहासिक विवेचन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,1993
2-दुबे श्यामचरण,भारतीय समाज, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2003
4.उपाध्याय कृष्णदेव, लोक संस्कृति कि रूप रेखा, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
5. गुप्ता एम. एल. और शर्मा डी. डी. , भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र,साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2012

ग्रामीण विकास: गांधी और अम्बेडकर के दृष्टिकोण

मिलिंद घाटे
हिसलोप कॉलेज नागपुर
मो. 996038175

परिचय:-सामान्यत: 'ग्रामीण विकास' विकास योजनाकारों और नीति निर्माताओं के लिए एक बड़ी चुनौती है। खेती योग्य भूमि की कमी और लगातार बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए, भारतीय गाँव कुछ ऐसी समस्याओं का सामना कर रहे हैं जो केवल भारत में ही मौजूद हैं। भारतीय गाँवों में समस्याएँ दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही हैं। काफी समय तक ग्रामीण विकास कार्यक्रमों एवं योजनाओं को क्रियान्वित करने के बाद भी समस्याएँ जस की तस बनी हुई हैं। कुछ पहलुओं में मामूली सुधार को छोड़कर, समग्र रूप से बुनियादी बदलाव लाने वाला विकास अभी तक नहीं हुआ है। आज भी कई गांव ऐसे हैं जहां बिजली, सुरक्षित पेयजल, स्वच्छता, स्वास्थ्य और शिक्षा के बुनियादी ढांचे आदि की पर्याप्त पहुंच नहीं है।

'ग्रामीण विकास' की अवधारणा भारतीय समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि 70% से अधिक लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं जो देश के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विकसित देश बनाने की दिशा में काम करने के लिए ग्रामीण भारत का विकास देश की पहली प्राथमिकता है। कई अन्य बुद्धिजीवियों ने ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर अपने विचार रखे हैं। अगर हम ऐतिहासिक साहित्य का अध्ययन करें तो पाएंगे कि भारत में विकास और ग्रामीण विकास कैसे हो, इस पर कई विद्वानों ने व्यापक चर्चा की है। हालाँकि, ग्रामीण विकास की तीन सबसे अधिक और लंबे समय से विवादित विचारधाराएँ हैं जिन्हें **अम्बेडकर की विचारधारा, गांधीवादी विचारधारा और नेहरूवादी विचारधारा** के रूप में जाना जाता है। ग्रामीण विकास की विचारधारा. ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के बारे में उन्होंने जो अपने विचार पेश किए हैं, उनके आधार पर ग्रामीण समाज के बारे में उनकी अपनी समृद्ध समझ है। यहां इस पेपर में अंबेडकर और गांधी के विचारों और दृष्टिकोणों का तुलनात्मक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है, जिन्हें ग्रामीण विकास की विचारधाराओं के रूप में जाना जाता है। पेपर में ग्रामीण विकास के बारे में गाँधी और अम्बेडकर के दृष्टिकोणों की बहस बताई गई है।

भारत के अलावा, ग्रामीण विकास अवधारणा का उपयोग पूरे विश्व में ग्रामीण पुनर्निर्माण के ग्रामीण विकास कार्यक्रमों द्वारा कवर की गई सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया को नामित करने में भी किया गया है। इसलिए, विश्व बैंक (1991) ने कहा कि विकास की मुख्य चुनौती जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना है। विशेष रूप से दुनिया के सबसे गरीब देशों में, 'जीवन की बेहतर गुणवत्ता के लिए आम तौर पर उच्च आय की आवश्यकता होती है लेकिन इसमें बहुत कुछ शामिल होता है; इसमें बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषण का उच्च मानक, कम गरीबी, स्वच्छ वातावरण, अवसर की अधिक समानता, अधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समृद्ध सांस्कृतिक जीवन शामिल है' (टोडारो और स्मिथ, 2003: 50)। इसलिए, ग्रामीण विकास को एक ऐसी अवधारणा के रूप में समझना जो ग्रामीण पुनर्निर्माण के पूरे सेट को दर्शाता है, विशेष रूप से भारत के संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है। आम तौर पर, मुख्यधारा के विकास विमर्श में, आर्थिक विकास, कृषि विकास, ग्रामीण विकास और विकास प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी को गरीब लोगों के जीवन स्तर को बढ़ाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है, इसलिए स्वतंत्रता के बाद के समय में, भारत ग्रामीण विकास पर फोकस किया है.

यह पेपर भारत में ग्रामीण विकास के संबंध में गांधी और अंबेडकर के भारतीय गांव की समझ की तुलना करने के लिए है। अधिकांश विकासशील देशों ने कुछ प्रकार की विकासात्मक समस्याओं का अनुभव किया है। गांधी और अंबेडकर जैसे भारतीय नेताओं ने एक नए भारत की कल्पना की और समाज में बड़े सुधार पेश किए, जैसे अस्पृश्यता का उन्मूलन, जातिवाद का उन्मूलन, निरक्षरता को दूर करना, समानता को बढ़ावा देना, शोषण का उन्मूलन। उन्होंने विकास को बढ़ावा देने के लिए जनता की ऊर्जा को दिशा देने की कोशिश की। गाँधीजी की दृष्टि में भारतीय गाँव ही केन्द्रीय बिन्दु थे। विकास के गांधीवादी परिप्रेक्ष्य को दो पहलुओं में विभाजित किया गया है, एक भौतिक समृद्धि पर आत्म-विकास और दूसरा गांवों, ग्रामीण उद्योगों और आधुनिक मशीनरी, प्रौद्योगिकी और मिलों पर जमीनी स्तर पर काम करने का विकास।

ग्रामीण विकास के संदर्भ में ग्राम संरचना के गांधीवादी परिप्रेक्ष्य:

ग्रामीण विकास के गांधीवादी दृष्टिकोण पर विस्तृत चर्चा की आवश्यकता है। गांधी जी के लिए स्वतंत्र भारत का विचार भारतीय गांवों में जीवन की बेहतरी के बराबर था। उन्होंने देश को लगातार याद दिलाया कि भारत की आत्मा उसके गांवों में है और केवल जब ग्रामीण जागृत होंगे और अपनी पूरी क्षमताओं तक पहुंचेंगे, तभी भारत वास्तव में स्वतंत्र होगा और सामाजिक और आर्थिक न्याय के एक नए युग की शुरुआत करेगा। ग्रामीण विकास की उनकी अवधारणा कई लोगों की कीमत पर कुछ लोगों के लिए अधिक आर्थिक समृद्धि नहीं थी; यह उत्पादन के साथ-साथ उपभोग ग्राम स्वराज और ग्राम विकास में पूरी आबादी की भागीदारी थी और उन्होंने अपने सिद्धांत के आधार पर ग्राम सेट-ऑफ की स्थापना की पुरजोर वकालत की। गांधी ने गांव के बारे में अपने विचार के बारे में अपनी पुस्तक में लिखा, 'स्वराज का अर्थ है कि यह एक पूर्ण गणराज्य है, जो अपनी महत्वपूर्ण जरूरतों के लिए अपने पड़ोसियों से स्वतंत्र है, और फिर भी कई अन्य लोगों के लिए अन्योन्याश्रित है, जिसमें निर्भरता एक आवश्यकता है' (गांधी, 1962: 31)). गांधीजी ने ग्रामीण सुधार और पुनर्निर्माण की समस्या के प्रति दृष्टिकोण की एक नई दृष्टि दी थी और नई शक्ति को क्रियान्वित किया और ग्रामीण सुधार के लिए नई संस्थाओं का निर्माण किया। उनके प्रयासों ने राष्ट्रीय विकास की चिंता करने वाले नेताओं की सोच को गहराई से प्रभावित किया है। यह स्पष्ट होगा कि भारत में नए शुरू किए गए सामुदायिक विकास कार्यक्रम का आधार गांधीवादी दर्शन और जीवन की अवधारणा का विकास है जिसे उन्होंने कई प्रयोगों में लागू करने का प्रयास किया। गांधी ने ऑल इंडिया स्पिनर्स एसोसिएशन, ऑल इंडिया विलेज इंडस्ट्रीज एसोसिएशन, गोसेवा संघ और हरिजन सेवक संघ आदि जैसे विभिन्न कार्यक्रमों की स्थापना की। यह व्यापक कार्यक्रम आर्थिक और सामाजिक दोनों मोर्चों पर ग्रामीण जीवन के पुनरुत्थान के लिए उनकी योजनाओं की जानकारी देता है। गांधीवादी आंदोलन वास्तव में लोगों का, लोगों द्वारा, लोगों के लिए एक आंदोलन था जिसने ग्रामीण पुनर्निर्माण की समस्या के दृष्टिकोण के संबंध में एक नई दृष्टि दी (उमराव सिंह, 1962)।

गांधी जी ने पहली बार ग्रामीण समुदाय के वास्तविक परिप्रेक्ष्य में उत्थान की अनिवार्य आवश्यकता पर विचार किया। उन्होंने इस कार्य को अपने रचनात्मक कार्यक्रमों का केन्द्र बनाया। गांधीवादी विचारधारा में रुचि रखने वाले कुछ लोगों के अनुसार गांवों में उनका योगदान महान और सराहनीय था। उन्होंने गांवों को स्वावलंबी और स्वावलंबी बनाने का प्रयास किया। उन्होंने एक सख्त कार्यक्रम के माध्यम से उत्पीड़न और अन्याय के खिलाफ खड़े होने के लिए गांवों की ताकत और सहनशक्ति विकसित करने का प्रयास किया। उन्होंने साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने, अस्पृश्यता दूर करने की योजनाएँ चलायीं, लेकिन इस कार्यवाही से गाँधीजी ने जाति व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए कुछ नहीं किया। गांधी जी वास्तव में जाति व्यवस्था के समर्थक थे। गांधी जी कहते हैं कि, 'जाति व्यवस्था समाज की स्वाभाविक व्यवस्था है।' यह उनका दृष्टिकोण है, वे कहते हैं कि 'मैं उन सभी का विरोध करता हूं जो जाति व्यवस्था को नष्ट करना चाहते हैं' (थोराट, 2007: 5)। आगे उन्होंने कहा कि 'मैंने जाति व्यवस्था को समर्थन दिया क्योंकि यह संयम का प्रतीक है। (थोराट, 2007 से उद्धृत: 6) यह जाति व्यवस्था के प्रति गांधी का दृष्टिकोण था। वह एक पारंपरिक व्यक्तित्व थे; वे वर्ण व्यवस्था में विश्वास करते थे और जाति के व्यवसाय के आधार पर वर्ण व्यवस्था को कायम रखना चाहते थे, इसलिए उनका ग्रामीण विकास का मॉडल स्वयं पारंपरिक संस्थाओं पर निर्भर करता है।

भारतीय गांवों में वंचितों की स्थिति:- अगर गांधी का ग्राम गणतंत्र अस्तित्व में भी आ गया तो तथाकथित 'ग्राम गणतंत्र' में वंचितों और 'अछूतों' का स्थान कहां है? दलित अभी भी गांवों में अपने अधिकार पाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं लेकिन उन्हें ऊंची जातियों से न्याय नहीं मिल सकता है जो दलितों के साथ भेदभाव करने से अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं। यदि गांधी का ग्रामीण विकास मॉडल इस प्रकार की असमानता को कायम रखता है तो गांधी का विचार सभी को स्वीकार्य कैसे हो सकता है? यही मुख्य कारण है कि अम्बेडकर ग्रामीण विकास के संदर्भ में भारतीय गांवों के बारे में गांधी के विचारों से भिन्न थे। इसलिए, गांधीजी ने अपने पूरे जीवन में ग्रामीण विकास के संदर्भ में गांवों पर ध्यान केंद्रित किया। दरअसल, गांधीवादी दर्शन किसी भी तरह से एक तरफ गांवों को न्याय देता है, लेकिन गांवों में ही कुछ लोगों (पूर्व-अछूत) के साथ उच्च जातियों द्वारा भेदभाव किया जाता था, जिनके गांव के मुख्य नेता दूसरी तरफ होते थे। 'अछूतों' को गांवों की मुख्य सड़क पर चलने, पानी, स्वास्थ्य और गांवों के बुनियादी ढांचे जैसी सार्वजनिक सुविधाओं तक पहुंच का कोई अधिकार नहीं था, जो गांधीवादी काल की सबसे खराब स्थितियों में से एक थीं। गांधीजी केवल हिंदू लोगों के हृदय परिवर्तन और हिंदू के हृदय की शुद्धि में विश्वास करते हैं। लेकिन आजादी के 64 साल बाद भी गांवों में बहुत कम बदलाव हुए हैं, गांवों में कोई बुनियादी बदलाव नहीं हुआ है. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का लाभ चाहे जो भी हो, गाँव के कुछ ही लोगों को मिल रहा है, इसका मतलब है कि गाँव पर जाति के रूप में किसका प्रभुत्व है, गाँव के सभी लोगों को नहीं। और यही कारण है कि ग्रामीण विकास का गांधीवादी विचार गांवों में सभी वर्गों के लोगों को न्याय नहीं दे पा रहा है। जबकि दलितों पर ऊंची जातियों द्वारा हमला किया जाता है, कोई भी 'अछूतों' की मदद के लिए नहीं आएगा या ऊंची जातियों के खिलाफ कोई कार्रवाई भी नहीं करेगा (अंबेडकर, 1989: 56)। अक्सर अपराधियों को सत्ता का दुरुपयोग करने वाले सरकारी अधिकारियों का समर्थन प्राप्त होता है। आज के परिदृश्य में गांवों में दलितों की स्थिति पर नजर डालें तो जातीय अत्याचार के सबसे ज्यादा शिकार दलित ही होते हैं। गांधी का ग्रामीण विकास मॉडल भारत के बहुत कम लोगों के लिए उपयुक्त है, सभी के लिए नहीं। क्योंकि गांधी का दर्शन केवल हिंदू दर्शन के इर्द-गिर्द घूमता है और वास्तव में भारत में केवल हिंदू ही नहीं बल्कि अन्य धर्मों के लोग भी रहते हैं। तो यदि गांधीवादी दर्शन केवल हिंदू धर्म और वर्ण व्यवस्था के बारे में तर्क देगा तो अन्य धर्मों के बारे में क्या? यदि गाँवों में स्वराज्य की बागडोर केवल हिन्दू लोग ही संभालेंगे तो बाकी लोग क्या करेंगे?

ग्रामीण विकास के संदर्भ में ग्राम संरचना के अम्बेडकरवादी परिप्रेक्ष्य:-अंबेडकर का दृष्टिकोण गांधी के गांव के सपने या ग्रामीण विकास के मॉडल से बिल्कुल अलग है। अम्बेडकर ने ग्राम गणराज्यों की धारणा पर आधारित ग्रामीण विकास के गांधीवादी मॉडल को खारिज कर दिया। अम्बेडकर ने भारतीय ग्राम संरचना और भारतीय हिंदू शास्त्रों का अध्ययन किया, जो उनके अनुसार; दलितों के प्राकृतिक अधिकारों को नकार दिया, परिणामस्वरूप अम्बेडकर ने उन विचारों की आलोचना की जो दलितों के बुनियादी मानवाधिकारों और अन्य सभी विचारों को खारिज करते थे जो पारंपरिक ग्रामीण जीवन शैली का समर्थन कर रहे हैं। गांधी और अंबेडकर स्वतंत्रता आंदोलन के सबसे महत्वपूर्ण विचारक हैं। ग्राम स्वराज में (गांधी, एम.के.: 1962, 30) ग्राम पंचायतें अस्पृश्यता उन्मूलन के मामले में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं यदि वे उस समस्या में वास्तविक रुचि लें, लेकिन दुर्भाग्य से अधिकांश पंचायतों में यह रुचि अभी तक पैदा नहीं हुई है (हालीपुर, आर.एन., परमहंस, वी.आर.के: 1969, 24)। इसलिए ग्राम स्वराज के संदर्भ में अम्बेडकर अक्सर ग्राम पंचायतों का विरोध करते थे। वे कहा करते थे, "गाँव क्या है, स्थानीयता का एक गड्ढा, अज्ञानता, संकीर्ण पागलपन और साम्प्रदायिकता का अड्डा। इस 'गणतंत्र' में लोकतंत्र के लिए कोई जगह नहीं है। वहां समानता के लिए कोई जगह नहीं है, वहां स्वतंत्रता के लिए कोई जगह नहीं है और वहां भाईचारे के लिए कोई जगह नहीं है। भारतीय गाँव गणतंत्र का बिल्कुल निषेध है (अम्बेडकर: 1989, 25, जोधका, एस.एस.: 2002ए)।

अम्बेडकर (1989:20) के अनुसार भारतीय गाँव एक इकाई नहीं है। इसमें अपने उद्देश्य में जातियाँ शामिल हैं। गांव की आबादी दो वर्गों में बंटी हुई है, एक है 'अछूत' और दूसरा है 'स्पृश्य'। स्पृश्य लोग प्रमुख समुदाय बनाते हैं और 'अछूत' एक छोटा समुदाय बनाते हैं। स्पृश्य लोग गाँव के अंदर रहते हैं और 'अछूत' गाँव के बाहर अलग क्वार्टर में रहते हैं। आर्थिक रूप से, स्पृश्य एक मजबूत और शक्तिशाली समुदाय बनाते हैं। जबकि 'अछूत' एक गरीब और आश्रित समुदाय हैं, सामाजिक रूप से स्पृश्य लोग एक शासक जाति की स्थिति पर कब्जा कर लेते हैं, जबकि 'अछूत' वंशानुगत बैंडमैन की एक विषय जाति की स्थिति पर कब्जा कर लेते हैं। अम्बेडकर का मानना था कि उन्होंने यह समझने की कोशिश की कि भारतीय गाँव में स्पृश्य और 'अछूत' जीवन की किन शर्तों पर रहते हैं? प्रत्येक गाँव में 'अछूतों' के लिए कुछ निश्चित संहिताएँ होती हैं जिनका पालन करना 'अछूतों' को आवश्यक होता है। यह संहिता उन चूकों और कृत्यों को निर्धारित करती है जिन्हें स्पर्श करने योग्य लोग अपराध मानते हैं। यदि 'अछूत' स्पृश्यों द्वारा दिए गए नियमों का पालन नहीं कर रहे होंगे, तो जाहिर तौर पर 'अछूतों' को सजा मिलेगी। इसलिए अम्बेडकर ने गांधीवादी ग्राम स्वराज के सामने हमेशा यह प्रश्न रखा कि गांधी किस प्रकार का ग्राम स्वराज चाहते थे।

इसके अलावा अम्बेडकर ने कहा कि भारतीय गांवों में 'अछूतों' को स्पर्श योग्य लोगों के लिए क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए, जिसका गांधी भारतीय अतीत का जश्न मना रहे थे। अम्बेडकर ने "द इंडियन घेटो- द सेंटर ऑफ अनटचेबिलिटी: आउट-साइड द फोल्ड" में बहुत ही पर्याप्त रूप से चित्रित किया है।

निष्कर्ष:- गांधीजी हमेशा पारंपरिक ग्रामीण संरचना पर जोर देते थे, लेकिन अंबेडकर स्वतंत्रता, समानता बंधुत्व जैसे विकास के आधुनिक विचारों में विश्वास करते थे, यही कारण है कि अंबेडकर अपने भाषणों में अपने अनुयायियों से कहा करते थे कि शहरों में जाओ और खुद को सशक्त बनाने के लिए शिक्षा लो। लेकिन गांधी ने भारतीय लोगों से कहा कि गांवों में जाओ; क्योंकि भारत का अस्तित्व गांवों में था, 'अगर गांव नष्ट हो गए तो भारत भी नष्ट हो जाएगा'। भारतीय गाँव जाति व्यवस्था के मुख्य साधन थे। गाँवों में ऊँची जाति के लोग, जो गाँधीजी के अनुयायी थे, द्वारा 'अछूतों' का शोषण किया जाता था। एक बात तो यह है कि भारतीय गाँव सजातीय नहीं थे और आज भी नहीं हैं। लेकिन गांधी और अंबेडकर में एक समानता थी कि जाति उन्मूलन. दोनों बुद्धिजीवी जाति व्यवस्था के ख़िलाफ़ थे लेकिन जाति को ख़त्म करने का उनका तरीक़ा अलग था और इसीलिए अंबेडकर अक्सर इस मुद्दे को लेकर गांधी की आलोचना करते हैं। अम्बेडकर ने 'अछूतों' और अन्य हाशिये पर पड़े लोगों को, जो विकास की मुख्यधारा का हिस्सा नहीं थे, मुक्ति दिलाने का प्रयास किया। अंबेडकर ने वंचित वर्गों की मुक्ति के लिए अपना पूरा जीवन योगदान दिया।

****

सन्दर्भ:-

1. अम्बेडकर, बी.आर. (1989) 'अछूत या भारत के बस्ती के बच्चे और अन्य निबंध', वसंत मून, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर: लेखन और भाषण, खंड-5, शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, बॉम्ब।
2. अम्बेडकर, बी.आर. (2008) 'डॉ. बाबासाहेब यान्चे बहिष्कृत भारत और मूकनायक', वसंत मून और हरि नारके, उच्च और तकनीकी शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, बॉम्बे।
3. अम्बेडकर, बी.आर. (1990) 'मि. गांधी और अछूतों की मुक्ति', वसंत मून (सं.) में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर: लेखन और भाषण, खंड-II, शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, मुंबई।
4. अम्बेडकर, बी.आर. (2005) 'ऑन विलेज पंचायत बिल-1,2,3,4', वसंत मून (सं.), डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर लेखन और भाषण, खंड-2, शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, बॉम्बे।
5. गांधी, एम.के. (2011) द स्टोरी ऑफ़ माई एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ एन ऑटोबायोग्राफी, अनुवादित, देसाई, एम. प्रकाश बुक्स, नई दिल्ली।
6. गांधी, एम.के. (1947) 'इंडिया ऑफ माई ड्रीम्स', प्रभु, के.आर. (ईडी) हिंद किताब्स लिमिटेड बॉम्बे।
7. गांधी, एम.के. (1962) 'ग्राम स्वराज', व्यास, एच.एम. (ईडी) नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद।
8. गांधी, एम.के. (2009) 'हिन्द-स्वराज: महात्मा गांधी का जीवन दर्शन', अनुवादक, कालिका प्रसाद, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली।
9. Jodhka, S.S. (2002) '*Nation and Village: Images of Rural India in Gandhi, Nehru and Ambedkar,* in Economic and Political Weekly, Vol -XXXVII, No. 33, Aug-2002, Pp. 3343-3353.
10. Ramaiah, A. (2011) *Relevance of Dr. Ambedkar's Demand for Separate Settlement, Mainstream*, Vol-XLIX, pp-17, Apr 17, 2011, (Online article).
11. Sharma, A. K.(2009) *Hind Swaraj Ki Prasangikta*, Kautillya Prakashan, New Delhi, India.
12. Singh, Katar. (1999) *Rural Development: Principles, Policies and Management,* Sage Publication, New Delhi, India.
13. Thorat, S. and Aryama (2007) *Ambedkar In Retrospect: Essays on Economics, Politics and Society*, Rawat Publications, New Delhi, India.
14. Thorat, S.K. (2001) *Rural Development: Problem and Prospect,* Prawara Rural Development Association, Prawaranagar, India.
15. Thorat, S.K. (1998) *Ambedkar's Role in Economic Planning and Water Policy*, Shipra Publications, Delhi, India.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
Volume - 01 Issue – 02 April– June -2023

Globalization of Patents and its Impact on Human Rights

Dr. Appu U. Rathod
Dept. of Political Science
Basaveshwar Arts College, Bagalkote

ABSTRACT:-Globalization of patents has become a major issue of concern in the background its impact on the human rights. The allotment of rights over patents has yielded considerable consequences that can affect the enjoyment of human rights. Globalization of patents may be good in one way but it will definitely affect the individuals' human rights who have invented a new thing with lots of pain. It is time to look at the globalization in an analytical perspective so as to protect the human rights. The patent rules should be subjected to strict verification and analyzed through human rights discourse.

KEYWORDS:-Globalization, Patent, Harmonization, Human Rights, WTO, TRIPs.

INTRODUCTION:-We are in the era of so called LPG (Liberalization, Privatization, and Globalization). Globalization has made this world a global village. Globalization is a process of international integration arising from the exchange of world views, products, ideas, and other aspects of culture. The supporters of 'globalization' described it as the panacea for all economic problems, and the only path to prosperity is to stick on to free-market principles. Some countries in the world are urging to deregulate and open up their economies to free trade and foreign investment, to ensure the development of their economies. But globalization has brought great inequity, mass impoverishment and despair, with it. The allotment of rights over patents has yielded considerable economic, social and cultural consequences that can affect the enjoyment of human rights. The current importance of patents for human rights reflects two developments. The first one is the expansion of the regions covered by patent regimes to incorporate, e.g. patenting of biological entities, copyright print protections in the digital domain, and private intellectual property claims with respect to cultural heritage and traditional knowledge. The second one is the emergence of universal regulations on intellectual property protection in the global trading system. Though globalization has increased the ability of civil society to function across borders and promote human rights; but some other factors have gained the power to abuse human rights in unforeseen ways. International human rights law intends primarily to protect individuals and groups from abusive action by states and state agents.

OBJECTIVE:-The objective of the paper is to identify the concept of globalization of patents and to analyze its impact on human rights. This paper's another objective is to look at the significant aspects of the globalization of patent rights and its consequences; and to trace out some ways to curb the abuse of human rights by the globalization of patents.

GLOBALIZATION OF PATENTS:-A patent means a set of exclusive rights granted by a sovereign state to an inventor or assignee for a limited period of time in exchange for detailed public disclosure of an invention. An invention is a solution to a particular technological problem and is a product or a process. Patents are included in intellectual property.

Recently there is a trend towards global harmonization (co-ordination) of patent laws; particularly the World Trade Organization (WTO) has been active in this area. The TRIPs (Trade Related Aspects of Intellectual Property) Agreement has been mainly successful in providing a forum for nations to agree on an aligned set of patent laws. Conformity with the TRIPs Agreement is required for admission to the WTO; so compliance is seen by many nations as essential. This aspect has also directed many developing nations, which may historically have developed different laws to assist their development, implementing patent laws along the lines of global practice.

Along with this, there are international treaty procedures, such as the procedures under the European Patent Convention (EPC) [comprising the European Patent Organisation (EPO)], that consolidate some portion of the filing and examination procedure. Same kind of arrangements exist among the member states of ARIPO and OAPI, the equivalent treaties among African countries, and the nine CIS member states that have built the Eurasian Patent Organization. Paris Convention for the Protection of Industrial Property is a crucial international convention relating to patents. It was initially signed in 1883. The Paris Convention gives a range of basic rules relating to patents, and even though the convention does not have direct legal effect in all national jurisdictions, the principles of the convention are included into all notable current patent systems. The most important aspect of the convention is the provision of the right to claim priority: filing an application in any one member state of the Paris Convention preserves the right for one year to file in any other member

state, and receive the benefit of the date of original filing. Patent Cooperation Treaty (PCT) is another crucial treaty, administered by WIPO which covers more than 140 countries.

GLOBALIZATION OF PATENTS AND ITS IMPACT ON HUMAN RIGHTS:-Economic rights, labor rights, cultural rights, civil and political rights etc. come under the human rights. The globalization is considered to have an impact on the human rights. The entrance to the WTO by the nations that violate human rights extinguishes the opportunities for valuable sanctions to discourage such violations. The open trade intensifies inequality in the distribution of income. In the same way the negative impact of globalization - particularly on vulnerable sections of the community results in the violation of various rights guaranteed by different Covenants in particular on the enjoyment of fundamental aspects of the right to life by the nations which have debunked human rights mechanisms. The conventional view that civil and political rights entail only negative obligations, while economic, social and cultural rights give rise to a more complex issue of positive State obligations which need resources to be expended. The United Nations Human Rights Committee has inferred certain rights guaranteed by the ICCPR as entailing positive obligations.

The negative effects of the globalization of patents on human rights can be divided into two categories. First, the globalization of patents may directly violate human rights by itself or in conjunction with another factor. This characteristically involves civil and political rights, such as the right to have property. The second category is concerned with indirect effects. It involves the globalization's influence on host governments. Globalization can undermine the state's ability to fulfill human rights law. Globalization uses its influence to encourage governments to adopt policies of liberalization, deregulation and privatization that ignore the consequences of human rights. This second effect is concerned generally with economic, social and cultural rights, which are vital in developing countries. Globalization is the engine of economic growth upon which the countries depend for the provision of the right to development. Globalization of patents has become a major issue of concern in the background its impact on the human rights. Globalization of patents may be good in one way but it will definitely affect the individuals' human rights who have invented a new thing with lots of pain.

CONCLUSION :-The struggle for human rights has become more complex and challenging in an age of globalization. It is not an exaggeration to say that Globalization is a double-edged sword for innovation. The globalization may give innovative companies the opportunity to go beyond national boundaries, but at the same time it may endanger their innovation without proper protection. It can even demolish the righteous cycle of patents and innovation and in due course cause "the patent crisis". The risk and cost of legal action is rising rapidly. It is creating a drag on innovation and imposing disincentives to invest in creative production. In this age of globalization, international harmonization of patent law is a natural and reasonable step which will benefit all participating countries. It is equally necessary and important to move forward consistently towards the direction of global patent protection. Realizing the human rights especially the economic and social rights has become more and more complex. The human rights can balance the forces of globalization within a just and ethical international legal framework. Priority should be given to maintain balance between globalization and protection of human rights. Every nation should formulate patent rules which are subjected to strict verification and those rules should be analyzed through the discourse of human rights. It is time to look at the globalization in an analytical perspective so as to protect the human rights.

****

REFERENCES :

1. Dreher A., Gassebner, M., & Siemers, H. R. (2010). *Globalization, Economic Freedom and Human Rights.* Center for European, Governance and Economic Development Research. Retrieved from: http://www.personal.umich.edu/~alandear/glossary/e.html
2. Hilary, J. (1999), *Globalization and Employment: New opportunities, real threats*. Panos Briefing, No. 33, p. 1.
3. Oloka-Onyango, J., & Udagama, D., (1999). *The Realization of Economic, Social and Cultural Rights: Globalization and its Impact on the full Enjoyment of Human Rights,* Preliminary report, Sub-Commission resolution 1999/8.
4. Sykes, A. O. (2003). International trade and human rights: An economic perspective. *The Chicago Working Paper Series Index*. University of Chicago Law School.(http://www.law.uchicago.edu/Lawecon/index.html)
5. M. Frumkin, "The Origin of Patents", Journal of the Patent Office Society, March 1945, Vol. XXVII, No. 3, pp 143 et Seq.
6. World Intellectual Property Organization (WIPO), The Impact of the International Patent System on Developing Countries 4 (2003), *available at ht*tp://www.wipo.int/meetings/en/doc_details.jsp?doc_id= 17556
7. Paul Goldstein, *Intellectual Property: The Tough New Realities That Could Make Or Break Your Business* 183 (Portfolio, 2007).
8. Phillip McCalman, *Reaping What You Sow: An Empirical Analysis of International Patent Harmonization* 30, (Working papers in Economics and Econometrics, June 1999).

कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में नारी समस्याएँ

सूर्जलेखा ब्रह्म
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
संपर्क : 6003427091/7576942436

प्रस्तावना : मानव जीवन समस्याओं से घिरा होता है। समस्याओं से जूझते हुए मानव को अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना है। तमाम समस्याओं के मध्य आज नारी समस्याएँ विश्वभर में अधिक प्रबल बन पड़ी है। जिसका हल और समाधान बेहद जरूरी है। स्त्री आदिकाल से ही समाज में पुरुष के शोषण का शिकार बनी रही है। शिक्षा प्रणाली, अज्ञानता का शिकार होकर वह अपना अस्तित्व खो चुकी है। स्वतंत्रता के नाम पर आज भी पुरुष उसे परतंत्र के अंधेरे में ही रखते हैं। 'कृष्णा सोबती' ने जिन समस्याओं को अपनी आँखों से देखा, जिया, महसूस किया उसी को अपने उपन्यासों में रूपायित करने का प्रयास किया। वह एक ऐसे समाज में जी है जहां नारी को राजनीतक, सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक और शिक्षा सभी प्रकार से घेरा जा रहा था। उसे अपने लिए सोचने का हक तो था ही नहीं साथ ही अपने साथ हो रहे अत्याचारों को भी किसी के समक्ष बयां नहीं कर सकती थी लेकिन सोबती ने अपने स्त्रियों को उनका निजबल पहचानकर आगे बढ़ने की और स्वयं समस्याओं को सुलझाने की नवीन दिशा दिखाने की कोशिश की है। मुख्यतः इस उपन्यास में हम नारी जीवन से संबंधित विविध समस्याओं को देखेंगे।

बीज शब्द : स्त्री, पुरुष, समाज, आर्थिक, समस्या आदि।

वेश्यावृति की समस्या :- वेश्यावृति या जिस्मफरोशी एक प्रकार का कारोबार है जिसमें पैसों के लिए शारीरिक रिश्ते बनाए जाते हैं। 'महाभारत' में राज, नगर, गुप्त वेश्या का, 'गौतम बुद्ध' के समय में 'आम्रपाली' का और 'बाइबिल' में 'केडोशोथ' वेश्याओं का वर्णन देखने को मिलता है। वेश्याएँ आदिकाल से हमारे समाज का हिस्सा रही है। उपन्यास में प्रमुख पात्र 'मित्रो' की माँ 'बालो' आर्थिक विपन्नता के कारण वेश्या समाज में प्रवेश करती है। अर्थ का संकट मनुष्य को झूठ बोलने, गलत तरीके अपनाने को मजबूर करता है। युवावास्था में ही पति के देहांत के बाद 'बालो' यह पथ चुनने को मजबूर होती है। 'बालो' कहती है "एक नहीं बालो ने सौ-सौ मर्द नचाए अपने इशारों पर बस एक खसम का सुख न बदा था इस अभागी के भाग।" अर्थात वह अपने पति को याद करती हुई कहती है कि कई मर्दो के साथ उन्होनें संबंध बनाए लेकिन जिसकी चाहत उन्हें थी वह आज उनके साथ नहीं है। 'राधाकमल मुखर्जी' लिखते हैं "सेक्स प्रेम तृप्ति के साथ-साथ सामाजिक आवश्यकताओं एवं नैतिक मूल्यों की भी पूर्ति करते हैं।" यौन संबंध कइयों के लिए गलत है तो कइयों की आवश्यकता पूरी करता है जिसे वह जीते-जी समाज में रहकर पूरा नहीं कर पाता। लेखिका 'बालो' के जरिये हमारे समाज को दर्शाते हैं कि किस प्रकार आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को अपनी गृहस्थी संभालने के लिए काम तक नहीं मिलता और न चाहते हुए भी उसे वहीं रास्ता अपनाना पड़ता है जो मनुष्य को समाज से परे कर दे। वेश्या 'बालो' पूरे समाज में तिरस्कृत होती है। लोग उसे गलत नजरिए से देखते हैं लेकिन उनके भीतर छिपे दर्द को कोई नहीं देख पाता। जिस कारण वह अपनी परिस्थितियों से स्वयं जूझती रहती है।

अधिकतर पुरुष काम की दाह बुझा लेने के बाद स्त्री को समाज से बहिष्कृत कर देते हैं। वे पुरुषों की काम वासना को तृप्त करने का साधन मात्र बनकर रह जाती है जिसका जीता जागता उदाहरण 'बालो' है। 'बालो' जबतक शारीरिक रूप से सुदृढ़ अपनी जवान अवस्था में थी, तब तक उसके पास न काम की कमी थी न पैसों की लेकिन जैसे ही वह वृद्धा अवस्था में आती है, उनका व्यवसाय बंद हो जाता है। उसके पास कोई नहीं आता, वह अकेली रह जाती है। अर्थात जब तक वेश्या युवा है, तंदुरुस्त है तब तक उसका आनंद लेने के लिए कई पुरुष आते-जाते रहते हैं लेकिन जैसे ही उसकी उम्र चली जाती है, यौवन बीत जाती है उसके सामने कोई नहीं आता। इस दर्द को 'बालो' अपनी बेटी 'मित्रो' के सामने अभिव्यक्त करती हुई कहती है "तेरी माँ के जमाने लद गए री मित्ती ! अब कौन इसका मित्र प्यारा और कौन इसका संगी-साथी ! अब इस ठुठरी ठंडी भट्टी का कोई वाली-वारस नहीं ! कोई मरे मनुक्ख का नाम भी नहीं। तेरी अकेली माँ को अब यह घर काटने को दौड़ता है, री।" इससे हम समझ सकते हैं कि वेश्या का जीवन एक बलि के बकरे की तरह होता है। उसके यौवन के ढलते ही सारे चाहने वाले एक-एक करके गायब हो जाते हैं। वेश्याओं की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए फ्रेंच लेखिका 'सिमोन द बोउवार' लिखते हैं "वेश्या की स्थिति एक बलि के बकरे के समान है। पुरुष उसके साथ व्यभिचार करता है और फिर उसे बहिष्कृत कर देता है। चाहे वेश्या वेध रूप से पुरुष की देख रेख में रहे, चाहे अवेध रूप से छिपकर अपना कार्य करे उसे हमेशा अछूत की तरह देखा जाता है।"

संतानहीन होने की समस्या :- भारतीय समाज में नारी की चरम निदर्शन उसके मातृ रूप में दिखाई पड़ती है। नारी के मातृत्व होने को ही उसके जीवन की पूर्णता का प्रतीक माना जाता है। कई नारी इस सुख को पाने में असमर्थ होती है। प्राय: ही संतानहीनता का दोष महिला के सिर पर थोंप दिया जाता है। आखिरकार पुरुष में भी कोई कमियाँ हो सकती है इसे कोई देखने की कोशिश नहीं करता। उपन्यास की नायिका 'मित्रो' इसी कुंठा से घिरी हुई है। पति नपुंसक होने के कारण वह मित्रो को संतानप्राप्ति नहीं करा सकता फिर भी वह हर-रोज उसके साथ अत्याचार, मार-पीट करता है। एक तो 'मित्रो' पहले से ही अपने माँ न बन पाने से दुःखी थी साथ ही जब वह अपने जिठानी 'सुहागवंती' के माँ बनने की खबर सुनती है तो और अधिक पीड़ित हो जाती है। वह खुश तो थी परंतु भीतर ही भीतर ईष्या महसूस करती है। जिठानी के माँ बनने पर उसकी सास मित्रो और उसकी जिठानी दोनों के लिए झुमके बनवाने को कहने पर वह अपनी दुःख व्यक्त करती हुई कहती है "मुझ पर ऐसी मोहर क्यों, माँ जी ! कौन मित्रो तुम्हारी पुत्र-पोते जनने बैठी है ? झुमके तो दिलवाओ अपनी उस भाग भरी बहू को जिसकी कोख खुलने वाली है।" अपने संतानहीन होने का सारा दोष वह अपने पति सरदारीलाल पर लगाती हुई कहती है "मेरा बस चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूँ पर अम्मा अपने लाडले बेटे का भी तो आड़तोड़ जुटाओ निगोड़े मेरे पत्थर के बूट में भी कोई हरकत तो हो।" 'मित्रो' की पीड़ा को सोबती 'मित्रो' की सास 'धनवंती' के द्वारा दर्शाते हैं "छेड़-छाड़, चटाक-पटाक, बोली-ताने में निपुण मित्रो इतनी सिदकवाली कब से हो गई ? नद-नदियां सी खुली-डुली बहू आज अंधेरी कोठरी सी गुमसुम क्यों ?" माँ बनने की चाहत को दर्शाते हुए 'डॉ.घनश्याम मधुप' लिखते हैं "मित्रो एक ऐसी नारी है मांस-सज्जा से बनी नारी जिसमें स्नेह भी है, ममता भी माँ की हौस भी और एक अविरल बहती वासना सरिता भी।"

सास के द्वारा अपने बेटे की प्रशंसा कर मेरा सरदारी स्वभाव का कड़वा है पर जी का बुरा नहीं। तुम्हारी भी कोख जल्द ही भरेगी कहने पर पति के संबंध में मित्रो अपनी सास से साफ-साफ शब्दों में कहती है "तुम्हारे इस बेटे के यहाँ कुछ होगा तो मित्रो चूहड़ी के पैरों का धोवन पी अपना जन्म सुफल कर लेगी !" 'सोबती' मित्रो के जरिये पूरे समाज से प्रश्न करती है कि क्या अगर स्त्री में कोई कमी होती तो पुरुष उसे पनाह देते ? क्या कोई पुरुष संतान की चाह में दूसरा विवाह नहीं करता ? 'मित्रो' संतानप्राप्ति के लिए दूसरे के संपर्क में जीना चाहती है मगर समाज और परिवार में उसे दोषी की नजर से देखा जाता है। उससे पूछा जाता है कि क्या यह सच है कि किसी से संबंध बनाने की कोशिश की है तो वह निडर होकर अपनी भावनाओं को अपने ही अंदर रखते हुए कहती है "सच तो यूँ, जेठ जी, कि दिन दुनिया बिसरा मैं मनुक्ख कि जात से हँस-खेल लेती हूँ। झूठ यूँ कि खसम का दिया राजपाट छोड़े मैं कोठे पर तो नहीं जा बैठी ?" अर्थात मित्रो इससे अपने को अपराधी नहीं मानती क्योंकि वह जानती है कि अपने सुख के लिए लड़ना कोई अपराध नहीं। मित्रो की माँ बनने की चाहत, समाज और परिवार का उनके प्रति प्रतिक्रिया पर 'रोहिणी' लिखते हैं "मातृत्व की अदम्य ललक मित्रो को इतना उदण्ड बना दिया है कि रूढ़ नैतिकता के परखचे उड़ाने को वह तैयार है। पति उसे माँ नहीं बना सकता और मित्रो है कि माँ बनना चाहती है। इस साथ को पूरा करने के लिए किसी और का सहारा ढूँढे तो तत्कालिन सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक मूल्यों की अदालत में अक्षम्य अपराधी ठहरा दी जाती है। एक सी प्रक्रिया, एक सा परिणाम लेकिन उस पर प्रतिक्रिया भिन्न।"

संयुक्त परिवार में स्त्री :-संयुक्त परिवार में प्रत्येक व्यक्ति की ज़िम्मेदारी होती है कि वह अपने स्वास्थ्य संबंधी समस्या हो या परिवार की कोई भी समस्या उसे आपस में मिलकर सूलझाये। संयुक्त परिवार का कोई एक मुखिया होता है जिसके अंतर्गत सारा निर्णय लिया जाता है पर आज की नारी स्वयं निर्णय लेना चाहती है जिसके चलते संयुक्त परिवार में विघटन होने लगा है। उपन्यास में कुछ ऐसे पात्र है जो संयुक्त परिवार से अपने को बाहर निकालना चाहती हैं तो कोई उसे संभालने के लिए जी जान लगा देती है। यहाँ देखा गया है कि केवल धनवंती ही अपने परिवार के प्रति सजग रहती है। कई बार वह नाकाम होती है फिर भी अपने बहू-बेटों को समझाती है "बेटा तुम्हारे बाप का जी राज़ी नहीं इनके कहे को भरम न करना बनवारीलाल, तू भाइयों में सबसे बड़ा है, तू ही पूछ अपने भाई-भौजाई से।" प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा होती है कि उनकी वृद्धावस्था सुख-चैन से गुजरे। इस संयुक्त परिवार के विखंडन से अधिक हानि बुजुर्गों को ही होती रही है जिसका जीता जागता उदाहरण 'धन्नो' और 'गुरुदास' है। अपनी पत्नी की तारीफ करता हुआ गुरुदास कहते हैं "धनवंती जैसी तुमने निभाई, कोई और क्या निभाएगा ? तेरे कर्मों में ही मेहनत है, साथिन।" तो वहीं हक्का-बक्का गुरुदास अपने दःख को व्यक्त करता हुआ पत्नी से कहता है "न लो, बड़ी उम्र में इस बूढ़े का इंतहान न लो। मैं बूढ़ा ठहरा, मुझे छूटती दो इन लड़ाई-झगड़ों से। धनवंती, कचहरी में कोई और नहीं, हम दोनों ही मुजरिम हैं।"

उपन्यास में गुरुदास और धनवंती आय दिन घर में चलने वाले बखेरों से परेसान है। मित्रो और उसके पति सरदारी के रोज के झगड़ों ने उन्हें इस उम्र में परेशान कर रखा है। एक तो धनवंती अपने घर परिवार को एकजुट न रख पाने के कारण चिंतित रहती है तो दूसरी ओर आज के आधुनिक नारी का परिवार से हटकर अकेले अपने परिवार बसाने का सपना देखना। जिसके चलते 'मित्रो' और 'फूलावंती' घर में गुस्से से लपटी घूमती रहती है। फूलावंती, गुलजारीलाल को हमेशा मायके ले जाने के लिए परेशान करती रहती हैं अंत में धनवंती हारकर भरा कंठ पुचकारकर कहती है "गुल बेटा, इस बूढ़ी की सोच न कर। जिससे तेरी घरवाली को ठंड पड़े, तू वहीं कर।" संयुक्त परिवार में आदान-प्रदान का विषय बना रहता है पर फूला नहीं चाहती वह अपने गहने लेने पर कसकर जवाब देती हुई कहती है "खूब कहीं,जेठानी ! जो बैठे-बैठे माल हथिया ले उसके लिए तो रह हुआ व्यवहार और जो बेचारा खो बैठे उसके लिए लूटमार।" वहीं मित्रो भी अपने अनुसार रहना चाहती है जहाँ उसे कोई रोक टोक न दे और न कोई उसे सवाल, जवाब करें।

समान अधिकार न मिल पाने की समस्या :- स्वतंन्त्रता पूर्व काल से ही नारी की स्थिति सोचनीय रही है। वह घर, परिवार, बच्चों, समाज तक ही उपेक्षित होकर रह जाती, उसे अपने लिए सोचने का हक नहीं था। वहीं आज की नारी अपने लिए आवाज़ उठाने में सक्षम होने लगी है फिर चाहे वह आर्थिक, सामाजिक हो या राजनीतिक। यहाँ 'मित्रो' के जरिये उन सारी मान्यताओं को तोड़ने का प्रयास किया है जो स्त्रियों को केवल चारदीवारी में ही बंद करके रख दे। 'मित्रो' आत्मसम्मान के लिए परिवार के सभी सदस्यों से लड़ती है। सोबती स्वयं कहते हैं "मित्रो व्यक्ति की जिस छटपटाहट का प्रतीक है वह यौन उफान ही नहीं, व्यक्ति की अस्मिता का भी अकस है जिसे नारी की पारिवारिक महिमा में भुला दिया जाता है। मित्रो को लिखने से पहले कुछ मालूम नहीं था कि वह किस तस्वीर की निगेटिवे थी या निगेटिवे से कौन सा चेहरा उभर आयेगा।" 'मित्रो' पितृसत्तात्मकता को तोड़कर नए समाज की कल्पना करती है जहाँ स्त्रियों को पुरुषों की तरह समान अधिकार मिले। सास उसे समझाती हुई कहती है "सुमित्रावन्ती इसे जिद चढ़ी है तो तू ही आँख नीची कर ले। बेटी मर्द मालिक का सामना हम बेचारियों को क्या सोहे ?" परंतु उसे यह स्वीकार्य नहीं। वह अपने अधिकारों के लिए लड़ना उचित मानती है। वह पति को परमेश्वर रूप में नहीं बल्कि मनुष्य के रुप में देखती है। वह चाहती है कि उसका पति उसे वहीं सम्मान दे जो हर पुरुष को मिलता है परंतु वह रोज उसके साथ मारपीट करता है। पुरुषसत्ता का विरोध करती हुई अपनी सास 'धनवंती' से वह कहती है "माँजी, बेटे की चिंता में तन न सुखाओ, इसकी करनी आप ही इसे काले पानियों भिजवाएगी।" अतः मित्रो के द्वारा स्त्री की एक ऐसी छवि उभरकर आई है जो आज तक हाशिये पर ही रही है। कभी वह समाज से, कभी परिवार से तो कभी पति से प्रतारित की जाती है।

यौन संबंध की समस्या : - स्त्री स्वतंत्रता की एक बड़ी कारण आज यौन-सुचिता बनी हुई है। उपन्यास में 'मित्रो' के जरिए यौन पवित्रता संबंधी भारतीय मानसिकता में परिवर्तन लाने का प्रयास किया है। मित्रो अपने पति के नपुंसक होने के कारण अतृप्त रहती है। 'मित्रो' की परिभाषा में 'डॉ. भगवानदास वर्मा' लिखते हैं "कृष्णा सोबती की मित्रो एक ऐसी नारी है जो पारंपरिक नैतिकता बोध के सारे विश्वासों से मुक्त है, केवल हाड़ माँस की बनी उन्मुक्त नारी। मित्रो के रूप में एक ऐसी नारी की प्राकृतिक वासना सारे अहम और सुप्राहम के गिलाए को फाड़कर बहे आ रही है फिर भी मित्रो वासना की सरिता नहीं है उसमें सुसंस्कृत नारी जैसा स्नेह, ममता आदि मानवीय गुण है। लगता है प्रत्येक नारी के हृदय में कही दूर मित्रो बैठी हुई है।" अतृप्त काम मनुष्य को बेचैन, अस्थिर एवं क्रोधित बना देता है जिसका जीता जागता उदाहरण 'मित्रो' है। मित्रो का जेठानी 'सुहागवंती' के समक्ष खटिया पर बिना सलवार, कुर्ते पहने लेटी रहना उसके अतृप्त यौन का परिचय देता है। एक तो पति 'सरदारीलाल' उसकी अतृप्त भावना को तृप्त नहीं कर पाता साथ ही रोज उसके साथ मारपीट करता है। सरदारीलाल हमेशा 'मित्रो' को नज़र नीचे करने को कहता है "सुना नहीं ! एक और जमाकर कहा नज़र नीची करती है कि नहीं।" मित्रो अतृप्त वासना को लेकर जीती है। जिसकी पूर्ति पति द्वारा न होने पर वह अन्य पुरुष से

संबंध बनाना चाहती है लेकिन वहाँ वह गलत ठहराई जाती है। यह केवल मित्रो की ही नहीं बल्कि कई ऐसी स्त्रियाँ है जो अपने पति से अतृप्तता की मांग करती है। मित्रो अन्य बहुओं की तरह घूँघट की चिंता नहीं करती। उसकी नजरें न कभी झकती है और न ही वह किसी से डरकर रहती है। कभी अपने ननद जनकों से काम सम्बन्धों की बात करती है तो कभी जेठानी 'सुहागवंती' से तो वहीं जेठ 'बनवारीलाल' को तिरछे नज़रों से छेड़ते हुए कहना "जेठ जी अपनी जिठानी के तूल तो मैं कहाँ पर एक नज़र इधर भी।" अपनी शारीरिक इच्छा की माँग करती हुई 'मित्रो' कहती है "देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। बहुत हुआ हफ्ते, पखवाड़े और मेरी देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास की मछली सी तड़पती हूँ।" मित्रो पहली ऐसी नारी है जो अपनी काम अनुभूति की व्यापक एवं निसंकोच ललक का उद्घाटन करती है। समाज जिसे कुकर्म, अधर्म मानता है मित्रो उसे कुकर्म नहीं मानती।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लेखिका ने नारी जीवन की तमाम समस्याओं को इस उपन्यास में चित्रित किया है। उनकी नारी किसी कल्पनालोक से उतरी नारी नहीं है बल्कि इसी दुनिया की इसी समाज की सताई हुई नारियाँ है। 'सोबती' अपने मार्ग का स्वयं निर्माण करके उस पर चलने में विश्वास रखती है तभी तो 'मित्रो', 'धनवंती', 'बालो', 'फूलावंती' जैसी पात्र को इस उपन्यास में लायी है। वह न किसी को पछारने की बात रखती है और न ही उसके अनुकूल होने की उन्होंने तो बस अपने बेबाक व्यक्तित्व के जरिये पितृसत्तात्मकता को तोड़ने का प्रयास किया है। उन्होंने इस उपन्यास के जरिये नारी की विभिन्न समस्याओं को बेबाक और निर्भीक ढंग से प्रस्तुत किया है। अतः हम कह सकते हैं कि 'कृष्णा सोबती' ने अपनी नायिकाओं का एक अस्तित्व स्थापित किया और उसे उसके व्यक्तित्व से परिचित कराया। आज की नारी पुरुष का अत्याचार सहन नहीं करती बल्कि उसका विरोध करती है। नारी को समाज में एक व्यक्ति के रूप में स्थापित करना लेखिका का एकमात्र उद्देश्य है और अपने इस उद्देश्य में उन्हें कामियाबी भी मिली। उनकी नारी आज सामाजिक व्यवस्था के साथ संघर्ष करके, मुक्ति की ओर अग्रसर होकर अपनी स्वतंत्रता का ऐलान करती है और समय के साथ परिवर्तित चेतना का परिचय देती है।

****

संदर्भ :-
1.सोबती कृष्णा,मित्रो मरजानी,पृ.-87.
2.अंतरेड्डी डॉ. सुलोचना,कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रतिबिम्बित नारी जीवन,पृ.-133.
3.सोबती कृष्णा,मित्रो मरजानी,पृ.-97.
4.खेतान प्रभा,स्त्री: उपेक्षिता,पृ.-248.
5.सोबती कृष्णा,मित्रो मरजानी,पृ.-75.
6.वहीं,पृ.-75.
7.वहीं,पृ.-66.
8.राठोड डॉ. शंकर ए. ,कृष्णा सोबती:व्यक्तित्व एवं कृतित्व,पृ.-66.
9.सोबती कृष्णा,मित्रो मरजानी,पृ.-67.
10.वहीं,पृ.-36.
11.बहुखंडी डॉ. सरिता,आदर्श नहीं यथार्थ कृष्णा सोबती का साहित्य,पृ.-135.
12.सोबती कृष्णा,मित्रो मरजानी,पृ.-34.
13.वहीं,पृ.11.
14.वहीं,पृ.-33.
15.वहीं,पृ.-35.
16.वहीं,पृ.-29.
17.बासमेह डॉ. शहनाज जाफ़र,कृष्णा सोबती का कथा साहित्य एवं नारी समस्याएँ,पृ.-230.
18.सोबती कृष्णा,मित्रो मरजानी,पृ.-12.
19.वहीं,पृ.-13.
20.बहुखंडी डॉ. सरिता,आदर्श नहीं यथार्थ कृष्णा सोबती का साहित्य,पृष्ट-134.
21.सोबती कृष्णा,मित्रो मरजानी,पृ.-10.
22.वहीं,पृ.-22.
23.वहीं,पृ.-19
24.वहीं,पृ.-20.

गूजरी महल संग्रहालय ग्वालियर सामान्य परिचय

डॉ. गोविन्द बाथम
सहायक प्राध्यापक इतिहास
शासकीय महाविद्यालय माड़ा, जिला-सिंगरौली (म.प्र.)

गूजरी महल संग्रहालय राज्य शाासन के पुरतत्व अभिलेखागार एवं संग्रहालय विभाग के छह प्रमुख संग्रहालयों में से एक है। पुरावशेषों के संग्रह की दृष्टि से इस संग्रहालय की गिनती देश के कुछ गिने चुने प्रमुख एवं अग्रणी संग्रहालयों में की जाती है।

सन् 1913 ई. में ग्वालियर राज्य के तत्कालीन महाराजा माधव राव सिंधिया ने पुरातत्व विभाग का गठन कर स्व.श्री एम.बी. गर्दे को इसका मुख्य नियुक्त किया तथा ग्वालियर में एक संग्रहालय स्थापित करने का निर्णय भी लिया। सन् 1920 ई. में संग्रहालय की स्थापना के लिये गूजरी महल स्थानीय पुरातत्व विभाग को सौंप दिया गया। संग्रहालय के लिये राज्य भर से पुरावशेषों का संग्रह किया गया। सन् 1922 ई. में संग्रहालय का विधिवत उद्घाटन किया गया। स्थापना से आज तक संग्रहालय ने विकास के कई सोपान पार किये हैं। नवीन दीर्घाओं का निर्माण किया गया है।

संग्रहालय में एक ग्रन्थालय है जिसमें पुरातत्व, इतिहास, संस्कृति, धर्म एवं दर्शन से संबंधित चार हजार ग्रन्थ हैं। विद्वान एवं शोधार्थी ग्रंथालय में बैठकर ग्रंथों का अध्ययन कर सकते हैं। संग्रहालय में एक विक्रय पटल (म्यूजियम शॉप) भी है, जिसमें विभाग द्वारा तैयार की गई पुरावशेषों की प्रतिकृतियां एवं विभागीय प्रकाशन विक्रय हेतु उपलब्ध है। दर्शकों, पर्यटकों की सुविधा के लिये विभाग द्वारा संग्रहालय में मार्गदर्शक की सेवाएं भी उपलब्ध है।

गूजरी महल किले के पूर्वी रास्ते पर बादलगढ़ दरवाजे के समीप स्थित है। रेल्वे स्टेश्न एवं बस स्टेण्ड से गूजरी महल संग्रहालय की दूरी लगभग 4 कि.मी. है। गूजरी महल जाने के लिये टैक्सी, टैम्पो एवं ऑटो की सुविधा उपलब्ध है।

संग्रहालय सोमवार एवं राजपत्रित अवकाश को छोड़कर प्रतिदिन प्रातः दस बजे से सायं 5 बजे तक खुला रहता है। संग्रहालय में बीस रूपये भारतीय तथा दो सौ रूपये प्रवेश शुल्क विदेशियों के लिए है।

गूजरी महल:- संग्रहालय के लिये चुना गया गूजरी महल अपने आप में ही एक दर्शनीय स्मारक है। स्थापत्य एवं अलंकरण की दृष्टि से यह महल ग्वालियर के किले का दूसरी महत्वपूर्ण महल है। गूजरी महल का निर्माण राजा मानसिंह ने अपनी सर्वाधिक प्रिय रानी मृगनयनी के रहने के लिये कराया था मृगनयनी गूजर वंश में पैदा हुई थी इसलिये इस महल का नाम गूजरी महल पड़ गया। राई गांव में रहने वाली गूजर कन्या निन्नी के नयन मृग के समान अत्यन्त सुंदर थे इसलिये राजा ने उसे मृगनयनी का संबोधन दिया।

एक रोचक प्रसंग के अनुसार एक बार राजा मानसिंह राई गांव के पास शिकार खेलने गये वहां उन्होंने एक रूपवती कन्या को अपनी बलिष्ठ बांहों से जंगली भैंसे को वश में करते हुए देखा। उस युवती में रूप एवं बल के अनूठे संगम को देखकर राजा उस पर मोहित हो गये। राजा ने निन्नी नामक उस सुंदरी के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा, जिसे उसने इस शर्त के साथ स्वीकार कर लिया कि विवाह के बाद भी वह राई गांव का ही पानी पियेगी। शर्त के अनुसार राजा मानसिंह ने राई गांव से महल तक पानी लाने की व्यवस्था की। गूजरी महल के तलघर में वे मिट्टी के पाइप आज भी देखे जा सकते हैं, जिनसे राई गांव का पानी महल तक लाया गया था। राजा मानसिंह एवं मृगनयनी की प्रेम कथा ग्वालियर के इतिहास का सर्वाधिक लोकप्रिय प्रसंग है।

गूजरी महल का बाहरी प्रवेश द्वार काफी बड़ा एवं मेहराबदार है। इससे होकर चढ़ाईदार रास्ते से महल तक पहुंचते हैं। तराशे गये मटमैले बलुआ पत्थर से बना, यह महल 101 मीटर लम्बा और 60 मीटर चौड़ा है। महल का प्रवेश द्वार भी मेहराबदार है। जिसके ऊपर नीले रंग से अरबी एवं फारसी का एक शिलालेख है, जिसमें उल्लेख है कि इस महल का निर्माण सन् 1512 ई. में कराया गया था। प्रवेश द्वार से जीना चढ़कर महल के आंगन में पहुंचते हैं। महल का आंगन काफी बड़ा है। आंगन के चारों ओर आयताकार कक्षों की श्रृंखला है। आंगन के नीचे तलघर में दो मंजिले और हैं जिनका उपयोग आमोद प्रमोद के समारोहों के लिये किया जाता होगा। महल की प्रथम मंजिल पर गुम्बदाकार आठ कक्ष बने हैं। कलात्मक तोड़ों पर आधारित छज्जे महल की सुन्दरता को कई गुना बढ़ा देते हैं। हालांकि महल तराशे पत्थरों से बनी सादी संरचना है, पर कहीं-कहीं प्रस्तर पर बड़ी कलात्मक वं बारीक पचीकारी का काम भी हुआ है। महल की बाहरी दीवारों को हरे एवं नीले रंगों से चित्रकरी कर सजाया गया है। प्रवेश द्वार के तोड़ों पर हाथी बने हुये हें। द्वार के ऊपर बाईं तरफ बने झरोखे में भी हाथी की एक विशाल मूर्ति है।

संग्रह:- संग्रहालय में संग्रहीत बहुमूल्य पुरातात्विके धरोहर में पाशाण मूर्तियां, मृण्मूर्तियां, शिलालेख, ताम्रपत्र लेख, सिक्के, कांसय मूर्तियां, रंग चित्र, अस्त्र-शस्त्र एवं उत्खनित पुरासामग्री शामिलन हैं।

मूर्ति शिल्प:- प्राचीन भारतीय मूर्तिकला के अध्ययन की दृष्टि से गूजरी महल संग्रहालय एक आदर्श संग्रहालय है, इस संग्रहालय में मूर्तियों का विपुल भंडार है। इनमें मौर्य, शुंग, गुप्त, प्रतिहा, कच्छपघात, परमार मूर्ति शिलप के श्रेष्ठतम उदाहरण सम्मिलित हैं। संग्रहालय की अतिविशष्ट एवं उल्लेखनीय मूर्तियों में यक्षमणिभद्र (प्रथम शती ईस्वी), यक्षिणी की मूर्ति (ईसा पूर्व 2री शती), महिशासुरमर्दिनी (5वीं शती), नृत्य एवं संगीत का दृश्य युक्त फलक (गुप्त कालीन) (5वीं शती), नागराज (5वी शती), योगिनी (7वीं शती), विष्णु विश्वरूप एवं उनके अवतार (10वीं शती) आदि की गणना की जा सकती है। ग्यारसपुर से प्राप्त शालभंजिका की मूर्ति इस संग्रहालय की सर्वश्रेष्ठ मूर्ति है। इनके अतिरिक्त विदिशा से प्राप्त सिंह शीर्ष, ताड़पत्र तथा भरहुत से प्राप्त वेदिका के अवशेष भी इस संग्रहालय की अमूल्य निधि है।

मृण्मूर्तियां:- संग्रहालय में पवाया से प्राप्त मृण्मूर्तियों का अच्छा संग्रह है। ये मृण्मूर्तियां तीसरी-चौथी शती ई. की हैं। इनमें अश्वमेध का घोड़ा, बुद्ध, स्त्री एवं पुरूष मस्तक आदि की मृण्मूर्तियां अद्वितीय हैं। इन मृण्मूर्तियों में शरीर सौष्ठव एवं केश विन्यास देखते ही बनता है।

शिलालेख एवं ताम्रपत्र:- संग्रहालय में 70 शिलालेखों, ताम्रपत्रलेखों का दुर्लभ संग्रह है। ये शिलालेख ब्राह्मी, देवनागरी तथा फारसी लिपियों में हैं। इन शिलालेखों के अध्ययन से तत्कालीन इतिहास एवं घटनाओं की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इसके ताम्रपत्रों में सुबन्धु-गुर्जरप्रतिहार एवं राजस्थान के राजाओं के ताम्रपत्र संग्रहीत है।

सिक्के:- संग्रहालय में सिक्के भी पर्याप्त मात्रा में संग्रहीत हैं। ये सिक्के ईसा पूर्व तीसरी शती से लेकर 20वीं शती ई. तक के हैं तथा सोने, चांदी, तांबे एवं मिश्र धातु से निर्मित हैं। संग्रहालय के प्रमुख सिक्कों में आहत सिक्के, गुप्तवंश, नागवंश, मुस्लिम, मुगल एवं सिंधिया राजवंश के सिक्के विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

कांस्य प्रतिमाएं:- संग्रहालय में कांस्य प्रतिमाओं का संग्रह भी है। इनमें पंचमुखी गणेश, ताण्डव करते हुए शिव, शेषशायी विष्णु, धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध, महिषासुरमर्दिनी आदि की कांस्य प्रतिमाएं प्रमुख हैं।

चित्र:-संग्रहालय में विश्वविख्यात बाघ की गुफाओं के भित्ति चित्रों की प्रतिलिपियां भी प्रदर्शित हैं। इनको सर्व श्री नंदलाल बोस, भांड, आप्टे, अहमद आदि प्रसिद्ध चित्रकारों ने तैयार किया।

इनके अतिरिक्त संग्रहालय में लघु चित्रों का भी संग्रह है। ये लघु चित्र मुगल, राजपूत, कांगड़ा, पहाड़ी एवं ग्वालियर शैलियों में निर्मित हैं। इनमें चंगेज खां का चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

अस्त्र-शस्त्र:- संग्रहालय में संग्रहित अस्त-शस्त्रों में विभिन्न प्रकार की बन्दकें, तोप, तलवार आदि हैं।

उत्खनित सामग्री:- संग्रहालय में मोहन-जोदड़ो, विदिशा, उज्जैन, महेश्वर-नावदाटोली, आवरा, पवाया, इन्द्रगढ़ आदि पुरास्थलों पर किये गये उत्खननों में प्राप्त सामग्री भी संग्रहीत है। इनमें मृदभाण्ड, मृण्मूर्तियां, मनके, कार्णाभूषण आदि प्रमुख हैं। कुछ मृण्मुद्रयें अभिलिखित भी है।

दीर्घायें:- संग्रहालय में बीस दीर्घायें हैं। इन दीर्घाओं में भारतीय धर्म, दर्शन, चिंतन, संस्कृति एवं स्वार्णिम अतीत की झांकी प्रस्तुत करने वाले बहुमूल्य पुरावशेषों को प्रदर्शित किया गया है। संग्रहालय में प्रवेश करते ही संग्रहालय के संस्थापक स्वर्गीय महाराजा माधवराव सिंधिया की संगमरमर की मूर्ति प्रदर्शित की गई है।

दीर्घा क्र.1:- इस दीर्घा का नाम ''स्वर्ण जयंती दीर्घा'' है। देश की स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती के गौरवशाली अवसर पर इसकी स्थाना की गई है। इस दीर्घा में स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित दुर्लभ दस्तावेजों एवं स्वतंत्रता संग्राम सैनानियों के छायाचित्र प्रदर्शित हैं। मौलिक दस्तावेज भोपाल, नागपुर, रीवा एवं ग्वालियर के अभिलेखागारों में सुरक्षित है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू के पैरों की छाप की फाइबर से तैयार की गई अनुकृति भी दीर्घा में प्रदर्शित है।

दीर्घा क्र.2:- इन दीर्घा में प्रदर्शित पुरावशेषों में उदयगिरि एवं बेसनगर (विदिशा) से प्राप्त दूसरी सती ई. पूर्व के मकर गरूड़ एवं सिंह स्तंभ शीर्ष तथा पवाया से प्राप्त सूर्य एवं ताड़ वृक्ष की पांचवी शती ई. की मूर्तियां महत्वपूर्ण हैं प्रदर्शित दो सिंह स्तम्भ शीर्षों में एक चौकी पर चार सिंह आपस में पीठ सटाए उकड़ूं एवं दूसरे पर एक सिंह बैठा हुआ है। पवाया से प्राप्त सूर्य की मूर्ति अपने आप में अनूठी एवं दुर्लभ है इसमें सूर्य की आकृति दो पार्श्वों में अंकित है।

दीर्घा क्र.3:- इस दीर्घा में सिक्के, ताम्र मूर्तियां एवं बाघ की गुफाओं में बने भित्ति चित्रों की अनुकृतियां प्रदर्शित है। सिक्कों में आहत (पंचमार्क), इंडो-सीथियन, नागवंश के राजाओं, गधैया, दिल्ली के सुल्तानों, मुगल बादशाहों, मालवा के सुल्तान एवं ओरछा के बुंदेला राजाओं के सिक्के प्रदर्शित है। प्रदर्शित कांस्य मूर्तियों में शिव के विविध रूप, विष्णु, दत्तात्रेय, बोधिसत्व आदि की मूर्तियां हैं। बाघ के चित्रों की अनुलिपियों में बोधिसत्व, जुलूस दृश्य, करूणा का दृश्य, संगीत समारोह, नायिका, गंधर्व आदि के चित्र हैं। ये अनुलिपियां सर्व श्री नंदलाल बोस, भांड, आप्टे, अहमद आदि प्रसिद्ध चित्रकारों ने तैयार की हैं।

दीर्घा क्र.4:- यह विशिष्ट प्रतिमा दीर्घा है। इस दीर्घा में गुप्त, प्रतिहार, परमार एवं कच्छपघात कला शैलियों की श्रेष्ठतम मूर्तियां प्रदर्शित हैं। ये मूर्तियां शैव एवं वैष्णव सम्प्रदाय से संबंधित हैं। शैव मूर्तियों में कोटा से प्राप्त स्कन्ध-कार्तिकेय, उदयपुर से प्राप्त शिव, सुहानिया से प्राप्त वीणाधर शिव, उज्जैन से प्राप्त नटराज, विदिशा से प्राप्त उमा-महेश्वर, हेरम्ब गणेश की मूर्तियां महत्वपूर्ण हैं। वैष्णव मूर्तियों में वामन, शेषशायी विष्णु एवं घुसई से प्राप्त हरिहर की मूर्तियां भी विशिष्ट हैं। सुहानिया से प्राप्त बृह्मा, पार्वती, गणेश एवं नंदी कच्छपघात कालीन श्रेष्ठतम मूर्तियां है। नायिकाओं में घुसई से प्राप्त नायिका एवं विदिशा से प्राप्त स्खलितवसना नायिका की मूर्तियां कला का उत्कृष्ट नमूना है। बदोह (विदिशा) से प्राप्त काशीपट्ट बहुत ही दुर्लभ मूर्तिखंण्ड है।

दीर्घा क्र.5:- इस दीर्घा में प्रदर्शित पुरावशेषों में बेसनगर से प्राप्त किसी बौद्ध स्तूप की वेदिका का ऊपरी भाग उष्णीय अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इसमें दोनों ओर बौद्ध धर्म से संबंधित घटनाओं को उकेरा गया है। एक ओर एक सिरे पर श्वेतकेतु हाथी को कमल धारण करते हुये दिखाया गया है। यह दृश्य बुद्ध जन्म को प्रदर्शित करता है। दूसरे सिरे पर बना स्तूप बुद्ध के महापरिनिर्वाण को दर्शाता है। दूसरी ओर के दृश्य में हाथी पर सवार राजा एवं घोड़े पर सवार युवराज को दिखाया गया है। इस दृश्य की पहचान इस प्रकार की गई है- बेसनगर का राजा बुद्ध की अस्थियां ले जा रहा है। ये अस्थियां बेसनगर में निर्मित स्तूप में रखी गई। यह उष्णीष इसी स्तूप की वेदिका का है। इस पर उत्कीर्ण लेख द्वितीय-प्रथम शती ईसा पूर्व की ब्राह्मी लिपि में है। उष्णीष के अलावा वेदिका की सूची भी दीर्घा में प्रदर्शित है। पवाया से प्राप्त मणिभद्र यक्ष की मूर्ति भी काफी महत्वपूर्ण है। मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख में कुषाण वंश के स्वामी शिवनंदिन के शासन का चौथा संवत् वर्ष अंकित है।

दीर्घा क्र.6:- इस दीर्घा में बेसनगर (विदिशा) से प्राप्त गुप्तकालीन महिषासुरमर्दिनी, नृसिंह, आवक्ष विष्णु, सप्त मातृकाएं, एक मुखी शिवलिंग एवं कायोत्सर्ग मुद्रा में जैन तीर्थंकर की मूर्तियां प्रदर्शित हैं। ये मूर्तियां गुप्तकालीन चौथी-पांचवी शती ई. की मूर्तिकला के सुंदर नमूने हैं। मांसल शरीर सौष्ठव, सुंदर केश सज्जा इन मूर्तियों की सबसे बड़ी विशेषता है।

सिरदल:- दीर्घा क्र.6 एवं 7 के बीच में पवाया से प्राप्त पांचवी शती ई. का विष्णु मंदिर का खण्डित सिरदल प्रदर्शित है। इसमें सामने की ओर बाईं तरफ नृत्य एवं संगीत सभा का दृश्य उकेरा गया है। इसमें विभिन्न वाद्ययंत्र बजाती महिला वादक दिखाई गई हैं। बीच में एक नर्तकी संगीत की स्वर लहरियों पर मोहक मुद्रा में नृत्य कर रही है। दासियों के साथ बैठी रानी नृत्य एवं संगीत का आनंद ले रही है। वाद्ययंत्रों में सप्ततंत्री वीणा (वियन्ची), बांसुरी, मृदंग एवं ढपली आदि शामिल है। दाहिनी ओर यज्ञ का दृश्य है। इसके आगे राजा बलि विष्णु के वामन अवतार को तीन पग धरती का दान दे रहे हैं। राजा से दान मिलने पर विष्णु अपने असली रूप में आकर पहला पग उठाते हैं जो अंतरिक्ष तक पहुंच जाता है। यह वामन अवतार का त्रिविक्रम रूप है। ऊपरी भाग में छोटे-छोटे वर्गाकार खानों में आठ नृत्यांगनायें नृत्य की अलग-अलग मुद्राओं में है। दूसरी तरफ समुद्र मंथन का दृश्य एवं स्कंद की मूर्तियां उत्कीर्ण है।

दीर्घा क्र.7:- इस दीर्घा में पवाया (प्राचीन नाम पद्मावती) से प्राप्त बलराम एवं त्रिविक्रम, तुमैन (प्राचीन तुम्बवन) से प्राप्त स्कंद एवं गंगा, तेरही (प्राचीन तेरम्बी) से प्राप्त कुबेर, मंदसौर (प्राचीन दशपुर) से प्राप्त द्वारपाल की मूर्तियां प्रदर्शित हैं। ये मूर्तियां गुप्त एवं उत्तर गुप्त कालीन हैं। धन के देवता कुबेर के दायें हाथ में सुरापात्र एवं बायें हाथ में धन की थैली है।

दीर्घा क्र.8:- इस दीर्घा में कोटा जिला शिवपुरी से प्राप्त सप्तमातृका, गजासुर वध शिव, बदोह से प्राप्त कृष्ण जन्म, विष्णु के कूर्म एवं वराह अवतारों, बेसनगर से प्राप्त चतुर्मुखी ब्रह्मा एवं ग्यारसपुर से प्राप्त चतुर्भुजी अम्बिका की मूर्तियां प्रदर्शित हैं। सप्तमातृकाओं की मूर्तियां कला एवं सौंदर्य की दृष्टि से अद्वितीय हैं। गजासुर वध की मूर्ति भी दुर्लभ है। इसमें शिव के 16 हाथ हैं। साधारणतया इस तरह की मूर्तियां में 10 हाथ ही होते हैं। विशाल कृष्णा जन्म की मूर्ति न केवल इस दीर्घा की बल्कि संग्रहालय की महत्वपूर्ण मूर्तियों में से एक है। ये मूर्तियां 8वीं से 10 वीं शती ई. की है।

दीर्घा क्र.9:- इस दीर्घा में बदोह से प्राप्त विष्णु के अवतारों यज्ञ वहार, नृसिंह, वामन, राम, बलराम, सर्वतोभद्रिका, कुबेर, अष्टदिक्पाल, तेरही से प्राप्त महिषासुरमर्दिनी, बाघ जिला धार से प्राप्त माता शिशु, पढ़ावली से प्राप्त कल्याणसुंदर की दो एवं सुहानिया से प्राप्त मय एवं वायु एवं पढ़ावली से प्राप्त 16 भुजी गणेश की मूर्ति प्रदर्शित है। इनमें यज्ञवराह की विशालकाय मूर्ति, सर्वतोभद्रिका जिसमें गरूड़ासीन विष्णु, त्रिविक्रम, नृसिंह एवं वराह की मूर्तियां हैं तथा कल्याणसुंदर की मूर्तियां दीर्घा की विशिष्ट मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां 9वीं शती ई. की है।

दीर्घा क्र.10:- इस दीर्घा में लघु चित्रों का प्रदर्शन किया गया है। ये लघु चित्र राजपूत, मुगल, कांगड़ा, पहाड़ी एवं ग्वालियर चित्र शैलियों के हैं। इन चित्रों में चंगेज खान, बाबर, हुमायूं, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब, बीरबल, नूरजहां, मुमताज, राजा मानसिंह के दरबार एवं शिकार का दृश्य, हम्मीरदेव, रानी लक्ष्मीबाई, सिंधिया महाराजाओं एवं राज परिवार के अन्य सदस्यों के चित्र प्रदर्शित हैं। विभिन्न चित्र शैलियों के चित्र इस दीर्घा में एक साथ प्रदर्शित किये जाने के कारण दर्शक इनका तुलनात्मक अध्ययन सुगमता से कर सकते हैं।

दीर्घा क्र. 11:- इस दीर्घा में पवाया (पद्मावती) से प्राप्त मृण्मूर्तियाँ प्रदर्शित है। यह पुरा स्थल ग्वालियर जिले की डबरा तहसील मुख्यालय से लगभग 20 कि. मी. दूर स्थित है। विष्णु पुराण, भवभूतिकृत 'मालती माधव', बाणभट्टकृत 'हर्ष चरित' एवं भोजकृत 'कंठाभरण' नामक ग्रन्थों में पद्मावती का उल्लेख हुआ है। नाग राजाओं की यह राजधानी थी। पार्वती एवं सिंध नदियों के संगम पर स्थित पवाया के पुराने टीलों की खुदाई श्री गर्दे ने 1924-25, 1933-34 तथा 1941 के वर्षों में की थी। खुदाई में मिली मृण्मूर्तियों को संग्रह कर गूजरी महल संग्रहालय में रखा गया। इसी संग्रह से चुनी गई कुछ मृण्मूर्तियाँ इस दीर्घा में प्रदर्शित है। इनमें राम सीता की मृण्मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नारियों की मूर्तियों में सुन्दर केश विन्यास देखते ही बनता है। सांचे में ढालकर बनाई गई इन मृण्मूर्तियों में गोल चेहरे एवं खुली हुई आंखे है। मुख पर हास्य एवं दुःखके भावों का सजीव रूपांकन है। ये मृण्मूर्तियाँ नाग एवं गुप्तकालीन कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

दीर्घा क्र. 12:- इस दीर्घा में ग्वालियर, विदिशा एवं पढ़ावली से प्राप्त जैन तीर्थंकर आदिनाथ, पद्मनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, धर्मनाथ एवं चंद्रप्रभु की मूर्तियाँ प्रदर्शित है। ये मूर्तियाँ ध्यान एवं कायोत्सर्ग मुद्रा में है। पादपीठ पर तीर्थंकरों के लक्षण खुदे हुये हैं जिनसे इनकी पहचान होती है। कुछ मूर्तियों पर लेख भी खुदे है। मुख्य रूप से ये मूर्तियाँ 11-12 वीं एवं 15-16 वीं शती ई. की है।

दीर्घा क्र. 13:- इस दीर्घा में वैष्णव मूर्तियों का प्रदर्शन किया गया है। इनमें ग्वालियर किले से प्राप्त स्थानक विष्णु, शेषशायी विष्णु, बलराम, कच्छप अवतार, सुहानिया से प्राप्त नृवराह, नृसिंह एवं राम सीता सहित चंदेरी एवं नरवर से प्राप्त वामन अवतार, सुनारी से प्राप्त योगनारायण विष्णु एवं गरूड़ासीन विष्णु की मूर्तियाँ है। ये मूर्तियाँ 9वीं शती ई. से 12 वीं शती ई. के मध्य की बनी हुई है। स्थानक विष्णु की मूर्तियों के परिकर में दशावतारों का भी अंकन है। शेषशायी-विष्णु की मूर्ति में शयन करते हुये विष्णु, विष्णु के पैर दबाती लक्ष्मी के साथ ब्रह्मा, गणेश, नवग्रह एवं मधुकैटभ नाम के असुर भी उत्कीर्ण हैं। बलराम की मूर्ति में दायें हाथ में चषक है एवं बायाँ हाथ कमर पर टिका (कटयावलम्बित मुद्रा) है। राम सीता की युगल मूर्ति भी उल्लेखनीय है। योगनारायण की मूर्ति के परिकर में ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं दशावतार भी उकेरे गये हैं। पॉलिशदार गरूड़ासीन विष्णु की मूर्ति के पादपीठ पर उत्कीर्ण लेख में विक्रम संवत् 1242 (1165 ई.) का उल्लेख है।

दीर्घा क्र. 14:- इस दीर्घा में नरेसर से प्राप्त मातृका (योगिनी), ग्यारसपुर से प्राप्त गजासुरवध, पार्वती सुहानिया से प्राप्त वैद्यनाथ, पार्वती, उदयपुर से प्राप्त नटराज एवं विदिशा से प्राप्त उमा-महेश्वर की मूर्तियाँ प्रदर्शित है। मातृकाओं में श्री इन्द्राणी, श्री कुबेरी, श्री वैष्णवी, श्री वारूणी देवी, श्री वाराही, श्री माधाली, श्री याम्या, श्री देवी निवाऊ, श्री उमा देवी की मूर्तियाँ शामिल हैं। मातृकाओं की इन मूर्तियों में उनके वाहन भी बने हैं। मूर्ति के पादपीठ पर मातृका का नाम भी लिखा है। दीर्घा की सबसे

महत्वपूर्ण मूर्ति गजासुर वध शिव की है। इस विशाल मूर्ति में शिव चतुर्भुजी हैं जबकि सामान्य तौर पर गजासुर वध मूर्तियों मे शिव की दस भुजायें होती हैं। शिव के गले में मुंडास्थि माला (नर मुंड एवं अस्थियों की माला) है तथा मुख पर ''विकट हास्य'' का भाव है। शिव के पैरों के पास चामुण्डा नृत्य करते हुए दिखाई गई है। पार्वती, नटराज एवं उमा-महेश्वर की मूर्तियाँ भी मूर्ति शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। प्रदर्शित मूर्तियाँ 11वीं-12वीं शती ई. की है।

दीर्घा क्र. 15:- इस दीर्घा में पढ़ावली एवं सुहानिया से प्राप्त गणेश कार्तिकेय की मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। चतुर्भुजी एवं अष्टभुजी गणेश की मूर्तियाँ आसनस्थ एवं नृत्य मुद्राओं में हैं। मुद्रा के लिहाज से ग्वालियर के किले से प्राप्त चतुर्भुजी गणेश की मूर्ति अपने आप में अनूठी है। चतुर्भुजी स्थानक कार्तिकेय की मूर्ति में पैरों के पास उनका वाहन मोर भी है। प्रदर्शित मूर्तियाँ 9वीं-10वीं शतीं ई. की है।

दीर्घा क्र. 16:- इस दीर्घा में सुहानिया से प्राप्त अग्नि, सूर्य (स्थानक), ब्रह्माणी, सरस्वती, पढ़ावली से प्राप्त चतुर्मुखी शिव, सूर्य (आसनस्थ) तथा बाघ से प्राप्त ब्रह्मा की मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। सुहानिया से प्राप्त एक अग्नि की मूर्ति की पहचान को लेकर विद्वानों में मतभेद है। सामान्यतः अग्नि की मूर्तियों में सिर पर जटा मुकुट एवं मुख पर दाढ़ी होती है। इस मूर्ति में सिर पर करंड मुकुट एवं मुख पर दाढ़ी नहीं है। साथ ही ऊपरी हाथों में गदा एंव पद्म है। ये दोनों आयुध विष्णु के हैं किन्तु निचले हाथ कमंडलु और पैरों के पास उत्कीर्ण वाहन इस मूर्ति के अग्नि होने की पुष्टि करते हैं। अतः इस मूर्ति को अग्नि एवं विष्णु के सम्मिलित रूप अग्नि नारायण की मूर्ति माना गया है। सुहानिया से प्राप्त सूर्य की मूर्तियाँ समपाद स्थानक (खड़े हुये) एवं पढ़ावली से प्राप्त सूर्य की मूर्तियाँ समपाद आसनस्थ (बैठे हुये) मुद्रा में हैं। चतुर्मुखी शिव की मूर्तियों में एक मुख अघोर रूप में है। इसमें शिव को कपाल से सुरापान करते हुये दिखाया गया है। दीर्घा में प्रदर्शित मूर्तियाँ 11वीं-12वीं शती ई. की है।

दीर्घा क्र. 17 एवं 18:- ये दोनों अभिलेख दीर्घायें हैं। इन दीर्घाओं में 28 अभिलेख प्रदर्शित हैं। ये अभिलेख द्वितीय शती ईसा पूर्व से 17 वीं शतीं ई. तक के हैं। इनकी भाषा प्राकृत, संस्कृत तथा लिपि ब्राह्मी, गुप्तकालीन ब्रह्मी, देवनागरी एवं अरबी, फारसी हैं। सबसे प्राचीन अभिलेख दूसरी शती ईसा पूर्व का महाराजा भागवत का स्तंभ लेख है जो बेसनेगर विदिशा से प्राप्त हुआ हैं। इसके अलावा चन्द्रगुप्त द्वितीय का मंदसौर से प्राप्त, कुमारगुप्त के शासन काल का तुमैन से प्राप्त, नरवर्मन के शासन काल का मंदसौर से प्राप्त, मिहिर भोज का सागर ताल ग्वालियर से प्राप्त, विक्रम सिंह का दूबकुंड से प्राप्त, आसल्ल देव का नरवर से प्राप्त, महाराजा अभय देव का लखारी से प्राप्त, प्रतिहार नरेश कक्कुक का ग्वालियर से प्राप्त, परमार नरेश उदयादित्य का उदयपुर से प्राप्त, नलपुर के राजा अधिकदेव का सुरवाया से प्राप्त, शुल्की वंश के राजा नृसिंह का मासेर से प्राप्त, मुहम्मद शाह खिलजी के शासन काल का नडेरी (गुना) से प्राप्त, मांडु के हुशंगशाह के शासन काल का सिंहपुर (गुना) से प्राप्त एवं आलमगीर के शासन काल का चंदेरी से प्राप्त अभिलेख ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इन अभिलेखों से तत्कालीन इतिहास की महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक जानकारी मिलती है साथ ही इनसे लिपि के क्रमिक विकास के अध्ययन में भी सहायता मिलती है। अभिलेखों के अलावा इन दीर्घाओं में ब्राह्मी लिपि के उद्भव एवं विकास लेखन कला की प्राचीनता, प्राचीन लेखन सामग्री, इस्लामिक सुलेखन आदि की जानकारी भी प्रस्तुत की गई है।

नीलांबर दीर्घा:- महल के आंगन में खुले आकाश के नीचे बनाई इस दीर्घा को नीलांबर दीर्घा का नाम दिया गया है। इस दीर्घा में सबसे पहले विद्या की देवी सरस्वती तथा विध्नविनाशक, मांगल्य की वर्षा करने वाले देवता गणेश की मूर्तियां प्रदर्शित की गई हैं। इनके बाद पंचदेवोपासना के देवताओं शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश, दुर्गा (महिषासुरमर्दिनी) की मूर्तियां हैं। पंचदेवोपासना के देवताओं के बाद त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु एवं उनके अवतार, शिव एवं उनके परिवार देवताओं की मूर्तियां हैं। इनके आगे दिक्पाल, तीर्थंकर, जेन शासन यक्ष, यक्षी एवं नायिकाओं की मूर्तियां प्रदर्शित हैं। नायिकाओं की मूर्तियों में अलसनायिका, सद्यस्नाता (नहाने के बाद बाल सुखाती नायिका) की मूर्तियां शामिल हैं। संग्रहालय (महल) के आंगन में नीलांबर दीर्घा के अलावा कई सुंदर अलंकृत स्तंभ, स्थापत्य खंड एवं मूर्तियां भी प्रदर्शित हैं। यहां प्रदर्शित प्रतिहार कालीन दो लघु मंदिर बड़े महत्वपूर्ण हैं। इन्हें देखकर प्रतिहार कालीन मंदिरों की विशेषताओं को आसानी से समझा जा सकता है।

अस्त्र-शस्त्र दीर्घा:- यह दीर्घा महल के तलघर में बनाई गई हैं। इसमें पाशाणयुगीन मानव द्वारा उपयोग में लाये गये पत्थर के हस्त कुठार, कुल्हाड़ी, खुरचनी आदि प्रदर्शित किये गये हैं। इन हथियारों को बनाने की विधियों को चित्रों द्वारा दर्शाया गया है। इनके अलावा दीर्घा में तलवारें, कवच, ढाल, भाला, गदा तथा कई तरह की बंदूकें, तमन्चे, तोपें आदि भी प्रदर्शित हैं। अस्त्र-शस्त्रों के साथ सिक्कों के छायाचित्र, पाषाण मूर्तियां, धातु मूर्तियां एवं लघु चित्र भी प्रदर्शित हैं जिनमें तरह-तरह के हथियारों का रूपांकन है।

संग्रहालय का गौरव:- गूजरी महल संग्रहालय अपने संग्रह की दुर्लभ मूर्तियों के कारण देश विदेश में अपनी एक अलग पहचान बनाये हुये है। विदेशों में आयोजित भारत महोत्सवों में इस संग्रहालय की कई मूर्तियां प्रदर्शित की गई हैं। ये मूर्तियां मूर्ति-विज्ञान एवं शिल्प सौन्दर्य की दृष्टि से विलक्षण मूर्तियां होने से अनतर्राष्ट्रीय महोत्सवों में समय-समय पर भेजी गई हैं। इन मूर्तियों ने गूजरी महल संग्रहालय की कीर्ति देश की सीमाओं के बाहर विदेशों में भी फैलाई है। निःसंदेह ये मूर्तियां संग्रहालय का गौरव है। ऐसी कुछ विशिष्ट मूर्तियों का विवरण निम्नानुसार है:-

शाल भंजिका:- यह अद्वितीय मूर्ति गूजरी महल संग्रहालय की पहचान बन गई है। शालभंजिका की यह मूर्ति विदिशा जिले के ग्यारसपुर नामक स्थान से प्राप्त हुई थी। दुर्भाग्यवश मूर्ति अपने पूर्ण रूप से नहीं है। मूर्ति के हाथ एवं पैर टूटे हुए हैं। खण्डित अवस्था में भी यह मूर्ति शिल्प कला का अनुपम उदाहरण है। नारी सौन्दर्य की सभी परिभाषायें एवं उपमायें इसके सामने फीकी पड़ जाती हैं। मुख पर विद्यमान मंद हास्य, केश सज्जा, आभूषण एवं अधोवस्त्र पर बने डिजाइन मूर्ति को विशिष्टता प्रदान करते हैं। मूर्ति का निर्माण काल 10वीं शती ई. है। यह मूर्ति फ्रांस एवं ब्रिटेन में आयोजित भारत महोत्सवों में प्रदर्शित की गई है।

गजासुर वध:- गजासुर वध की यह मूर्ति ग्यारसपुर से प्राप्त हुई है। इस मूर्ति में शिव को गजासुर नामक असुर को मारते हुए दिखाया गया है। मूर्ति का ऊपरी भाग खण्डित है। चतुर्भुजी शिव के मुख पर विकट हास्य के भाव हैं। शिव अपने शरीर पर मुण्डमाला धारण किये हुए हैं। पैरों के पास चामुण्डा नृत्य मुद्रा में है। सिर पर जटा जूट एवं अन्य अलंकरण हैं। प्रतिमा के परिकर में रत्न पुष्प की श्रृंखला है। यह मूर्ति 10वीं शती ई. की है। इसे फ्रांस एवं ब्रिटेन में आयोजित भारत महोत्सवों में प्रदर्शित किया गया है।

नटराज:- नटराज की यह मूर्ति (उदयपुर) से प्राप्त हुई है। यह किसी मंदिर की शुकनासिका है जिसमें 10 भुजी शिव नृत्य मुद्रा में उत्कीर्ण हैं। शास्त्रों में नृत्यरत शिव को नटराज कहा गया है। यह मूर्ति 10वीं शती ई. की है। इसे सॉन फ्रांसिस्को में देवताओं पर आधारित प्रदर्शनी में प्रदर्शित किया गया है।

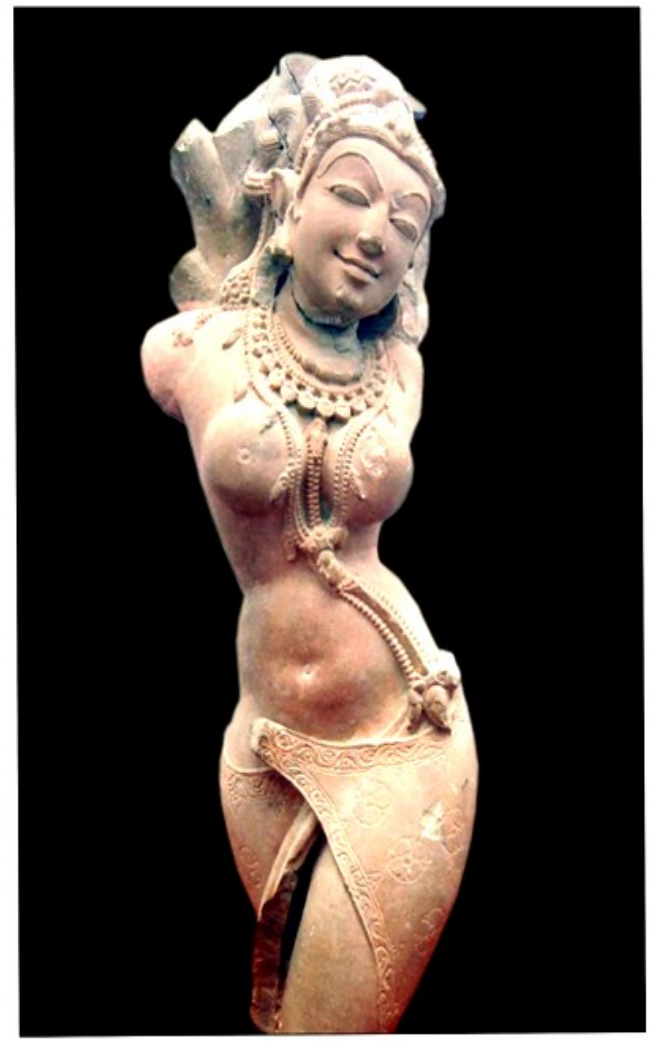

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
Volume - 01 Issue – 02 April– June -2023

Photo -Kamal Guda

Photo -Kamal Guda

शाल भंजिका

संदर्भ :-

1. स्वयं के सर्वेक्षण के आधार पर तैयार किया .

The myth and the reality

(The man of Indian mutiny,special context of 1857 unsuccessful rebellion hero Tatya Tope)

Dr. Pramesh Dutt Sharma
Assistant nodal officer
Municipal corporation museum Gwalior M.P.

India is land of freedom fighters those scarifies their life for her beloved mother land. British came to India for the purpose of trading but slowly-slowly they acquire Indian subcontinent area finally they stabiles an Emperor and started illegitimate act. After one decade of unlawful rule people rising their voice against British rule. In 1857 Indian first munity were started many of the Indian freedom fighter organizedand stared their fight against British rule. Tatya Tope is one of them who fought against British raj and gave remarkable teaching for upcoming generation,never gave up whether the condition will be. Prince state Gwalior (Madhya Pradesh) have an evidence related martyr Tatya Tope, his weapons and imprisonment/self declared letter which kept on and displayed by municipal corporation museum Gwalior Madhya Pradesh.

The British east India Company came to India in 1600 century A.D. England queen granted one charter favour of one merchant company of London. It was mainly stabiles for East Indiansubcontinent trade but the trader company eventually takeover large areas of India exercising military power and assuming administration function. East India Company (EIC) came to the power in India after battle of Plassey began their rule in 1757 and lasted 1858. When Indian rebellion of 1857 come to the light which deeply affected the East Indian companies rule and administration. British crown let to Passed and form a new act called government of India Act 1858. Under which, The British Crown assuming direct control of Indian subcontinent as a new British Ruler.1

The 1857 rebellion of India was started in May 1857 and ended 1st November 1858. The war duration which basically dissatisfied the people by various perception including harsh tax policy, British social reformation, some rich landlord and princesprovided special treatment, as well as local people having a doubt of improvements brought by British rule.

Many of the freedom fighter who loved their mother land participated 1857 first rebellion of India and sacrifice their life for beloved mother land. Tatya tope was a one of the legendary freedom fighter who ruin every conspiracy against their mother land and successfully led to Indian mutiny army. TatyaTope was born 16 February 1814 Yeola Maratha Empire, in present Nashik district Maharashtra India. Tatya Tope real name was Ramchandra Panduranga and he was a Marathi DeshathaBrahmin.He took on the tittle “Tatya” that means General and Tope means commanding officer. Contemporary peoples figured out the Tatya Tope as a wheat complexion and always wearing a white churti-dar -turban.

Tatya was an unmatched general. He was not disappointed by the defeat. He established independence in Kanpur but soon British army attacked Kanpur from the Allahabad side under the command of Brigadier General Havelock. Tataya tope gave his life best but unfortunately he was defeated and had to leave Kanpur. Soon they reorganized their army in Bithoorto take chanceto attack Kanpur. But Fortune not favour of Tatya tope Brigadier General Havelock attacked Bithoor and defeated Tataya tope. Although Tataya led the Indian solider very bravely even British general had to raisedhim.

He was successful in joining the famous army unit named Gwalior Contingent. 20000 soldiers of Tatya tope helped Rani Laxmibai when Hughes besieged Jhansi on 22 March. Ultimately Rani won. After that Rani and Tatye tope reached Kalpi where they had to fight against British commandant Huroz, on this war Tatyafacing a defeated. Soon Tatya tope were understand that he had to take new remarkable and vigorous step. He was joining in Maharaja Jayaji Rao Scindia army and captured the famous fort of Gwalior. Rani Laxmibai, Tatya tope and Rao sahib entered Gwalior, playing trumpet and declared Nana sahib as Peshwa, on this opportunity, freedom fighter army was fulfill with joy. But again fortune not favour of Tatya tope and army of Hughes attacked on him. Rani laxmi Bai was martyred on 18th June 1857 in the battle near Phoolbagh. British ruined 1857 rebellion an almost finished every possibility of Indian mutiny but Tatypa had patience and continuing started mutiny in the form of Gorilla war again British.But he did not get any expected conquest opposed British ruler.Finally he got the sheltered under the king of Narwar Raja Man Singh. Man Singh was disputed against the Gwalior king but British ruler made a plan and successfully dominate him. Man Singh not obliging Tatya and hand over him to the British army. British court started impost several charges against him and declared him as a terrorist and executed at the gallows on the 18 April 1859 in Shivpuri which 100 km far from Gwalior. Tatya sacrifice his life for his beloved motherland. They created remark on upcoming

generation that freedom is a birth right and every people would have to get it. The Rajasthan history of 9thcongress conferenced came to the light of some history material related Tatay tope, they mentioned actually Narwar king Man Singh helped Tatye with a smart plan and replace Tatye tope with another freedom fighter who caught by British army, at last Narwer king saved Tatay life. Gajendra Singh Solanki written a book "what is the alleged hanging of Tatya Tope" about Tatya tope the publication by Akhil Bharatiye Ithasa Anthikaran Yojana New Delhi. Under this book Solanki mentioned some letter and document related Tatya Tope. Published Narayan Bhagwat picture on the cover page of this book .One of the other book related Tatya, which name is Desi Dharam. On this book one of the foot note has also been founded, where mentioned that Narwar king Man Singh replaced Tatya one of the reliable freedom fighter who caught by British army and send to jail, impost various traitor cases in the British court. At last he hanged to the death near Shivpuri.[2]

Prince state Gwalior (Madhya Pradesh) have an evidence related martyr Tatya Tope,his weapons and imprisonment/self declared letter which kept on and displayed by municipal corporation museum. Corporation Museum was built by H.H Shrimant Madho Rao first .He was great administrator and he established Municipal Corporation in 1889 A.D. MadhoRao first was built a State museum. Which later on transferred to municipal corporation Gwalior in 1922 on that time state museum changed that name as a Vichitralay and kept stored 1857 munity warrior weapons and related evidence. After 1980 Museum again change its name, on that time its name as Corporation museum Gwalior. Till now the same name carry forward by corporation museum .One of the museum gallery of the corporation museum tributes Martyr Tatya Tape, under which it is displayedthe related weapons of his time. On this gallery the imprisonment/self declared letter related Tatya Tope which he was written,when he was under the custody of British army. In this letter Tatya along with one of the witness which name was Ganga Prasad MunshiRishal Dasboth signature were displayed. Martyr selfdeclared letter have been displayed into three languages Urdu,English and Hindi Along with this letter,the picture of martyr Tataya also displayed in this museum gallery when he was under the custody of British.3Every year municipal corporation has been organized a fair which called "BalidaanMela"(sacrifice fair) by the help of corporation museum of Gwalior. Since 19 years municipal corporation museum have been successfully organized The"VeeranganaBalidaanmela". Under which they are displaying the weapons of the immortal martyr of 1857 who was sacrificed for freedom for his mother land.

Conclusion:-

The first war of independence of 1857 A.D. was a great event against British rule, the struggle was not accidental but the result of Indian discontent of the whole century, a great plan was created and implemented .The revolution of 1857 started from Meerut on May 10,1857 which slowly spread to Kanpur, Barelliy, Jhansi, Delhi, through places like Awadh. It spreads throughout the country and took the form of mass revolution. This revolution was completely against the British power. This was called Indians first independent revolt.

1857 rebellion was the century changing incident which kept on the rising flamed on the heart of whole Indian people. Tatya Tope was real martyr who beloved his mother land and sacrificed his life. It should be matter of discussion of history expert. Where most of the country person known that Tatye was martyr on the Indian first rebellion in 1857 and keep on his related evidence in corporation museum Gwalior M.P. But on the other hand Tatye's relatives has strong proof which presenting of his living after 1857 rebellion and he was died to normal death in 1909. Expert should be examine his old and new related evidence which can give us trustable and reliable facts about martyr Tatye Tope's life. Mena while history should be revive.

Amar Shaheed Tatya Tope
In British military court after his arrest, picture has been kept in Municipal corporation museum Gwalior

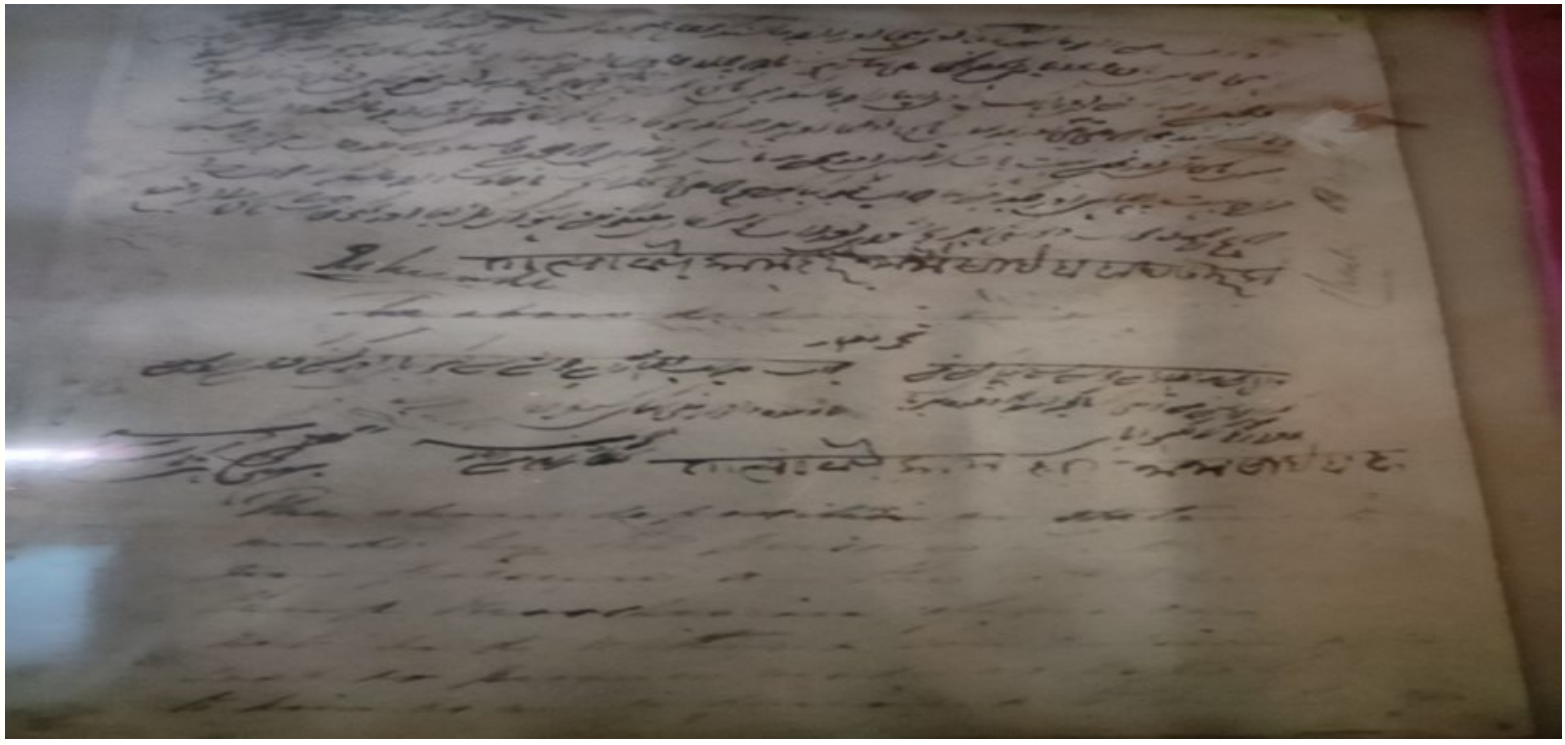

Urdu and English Statement of the martyr Tatya Tope in Corporation museum in Gwalior

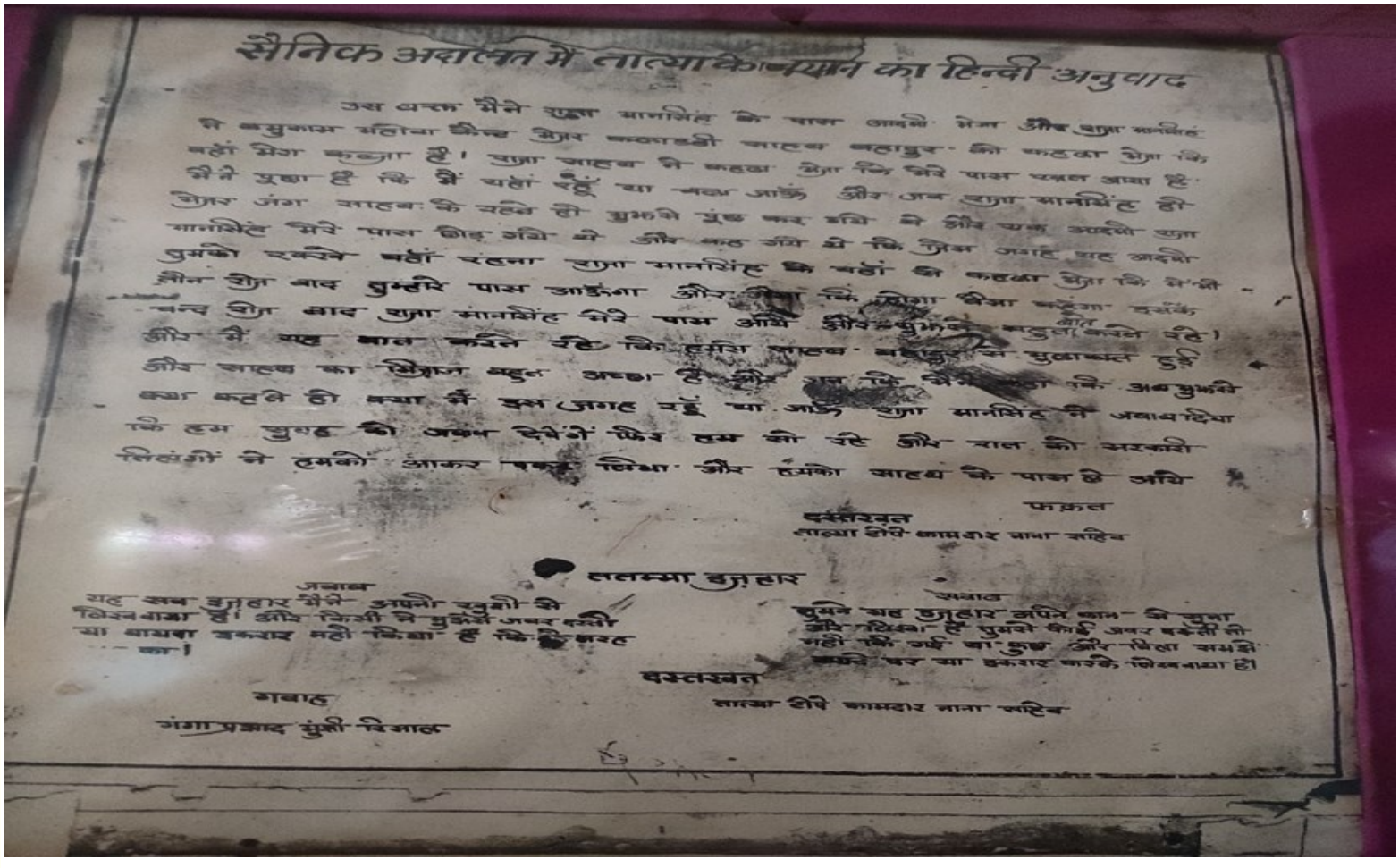

Hindi Language Statement of the martyr Tatya Tope in Corporation Museum Gwalior

Weapons of the time of the immortal martyr Tatya Tope displayed in corporation museum Gwalior

1-Todedar gun
2-Rivolver
3-Knife

Reference

1. Marshall, P.J. (2001) ***"1783-1870: expanding empire"***, P.J. Marshall(ed.), The Cambridge Illustrated History of the British Empire, Cambridge University Press,P. 50 ***ISBN 978-0-521-00254-7.***
2. Jafar, Syaed Mahmud. (1994). ***Pillars of modern Indiam1757-1947.*** New Delhi: Ashih Pub.House.pp.14-15 ***ISBN 9788170245865***.
3. Baseon Gwalior Municipal Corporation museum Exploration and getting information about martyr Tatya tope.

The Rise of Green Industries: Catalyzing Sustainable Development in Post-COVID India in 2023

Dr. Renu Sinha
Head of the Department, Hindi
Nirmala College, Doranda,
Ranchi, Jharkhand – 834002Mo - 9430763472

Introduction-The COVID-19 pandemic has exposed the fragility of our global economy, highlighting the importance of adopting sustainable practices to ensure long-term prosperity. In India, the rise of green industries has emerged as a powerful tool for promoting sustainable development. As the country navigates the post-pandemic era, green industries are playing a critical role in balancing rapid economic growth with environmental stewardship. This essay delves into the emergence of green industries in India in 2023, examining their potential to drive sustainable development.

The Need for Green Industries-As one of the world's fastest-growing economies, India faces the challenge of reconciling rapid industrialization with environmental preservation. With a population exceeding 1.3 billion, the demand for resources such as energy, food, and infrastructure is immense, putting tremendous pressure on the environment. Recognizing the need for sustainable development, green industries have emerged as a key component of India's growth strategy.Green industries focus on developing and producing environmentally friendly goods and services. By prioritizing energy efficiency, waste reduction, and renewable resources, these industries contribute to a circular economy that fosters sustainability and minimizes environmental harm.

Government Support for Green Industries-The Indian government has acknowledged the importance of green industries and has implemented various policies and initiatives to support their growth. Key programs include: National Action Plan on Climate Change (NAPCC): Launched in 2008, the NAPCC outlines India's strategy for addressing climate change. The plan comprises eight missions, including the National Solar Mission and National Mission for Enhanced Energy Efficiency, which promote renewable energy and energy-efficient technologies. Atmanirbhar Bharat Abhiyan (Self-reliant India Movement): Introduced in response to the COVID-19 pandemic, this initiative aims to make India self-reliant and strengthen the economy by encouraging local production and consumption. The movement encompasses various sectors, including renewable energy, electric mobility, and green technologies, thereby bolstering green industries. Production Linked Incentive (PLI) Scheme: The PLI scheme offers incentives to manufacturers in various sectors, including advanced chemistry cell battery storage, solar photovoltaic modules, and green hydrogen. By promoting local manufacturing, the scheme supports the growth of green industries and reduces India's reliance on imports.

Key Green Industries in India-Green industries in India have experienced substantial growth in recent years, primarily in renewable energy, waste management, and sustainable agriculture. Renewable Energy: India has made significant strides in harnessing renewable energy, with solar and wind power at the forefront. The country has set ambitious targets for renewable energy capacity, aiming to achieve 450 GW by 2030. Investments in solar parks, wind farms, and decentralized renewable energy systems have helped drive down costs and improve access to clean energy.

Waste Management and Recycling: Rapid urbanization has made waste generation a pressing concern in India. Green industries focusing on waste management and recycling have emerged as potential solutions, promoting waste segregation, recycling, and resource recovery. Companies like Greensole, which upcycles discarded footwear into new products, and Banyan Nation, a technology-driven recycling venture, exemplify the potential of this sector.Sustainable Agriculture: Sustainable agriculture practices, including organic farming, precision agriculture, and agroforestry, have gained traction in India as a means to reduce environmental degradation and promote food security. Companies like CropIn, which leverages data-driven insights for sustainable farming, and Samunnati, a financial institution focused on smallholder farmers, exemplify the role of green industries in promoting sustainable agriculture.

Conclusion-The emergence of green industries in India serves as a testament to the country's commitment to sustainable development in the post-COVID era. By fostering the growth of green industries, India is proactively addressing the dual challenges of environmental preservation and economic growth. Government initiatives and policies have played a pivotal role in this transformation, creating a supportive ecosystem for green industries to thrive. The growth of renewable energy, waste management, and sustainable agriculture sectors highlights the potential of green industries in driving sustainable development. As India continues to navigate the post-pandemic world, the green industries will play an increasingly important role in shaping the nation's future. By embracing these industries and prioritizing sustainability, India can achieve its development goals while ensuring the well-being of both its people and the environment.

Dilemmas and Dynamics: Introspecting the Challenges of Democracy in Pakistan

Dr. Subhash Kumar Baitha
Assistant Professor
Department of International Relations
Central University of Jharkhand

Introduction:-The journey of democracy in Pakistan has been a subject of profound deliberation and scrutiny, a narrative shaped by challenges encountered from Pakistan's independence. While the nation's transition to democratic governance represented a momentous milestone, Pakistan has been accompanied by an array of intricacies that have hampered its consolidation and efficacy.

The complexities of democratic development in the Pakistani context have engendered persistent discourse and reflection. While acknowledging the strides made towards democratic governance, it is imperative to dissect the various issues that have influenced the course of democracy's growth and resilience in Pakistan. By delving into these challenges, we can glean insights into the multifaceted dynamics that have shaped the trajectory of democracy in Pakistan.

This analysis is not only an exercise in historical examination but also an exploration of the present challenges that continue to influence the democratic landscape. The amalgamation of historical context and contemporary realities serves as a foundation for comprehending the intricacies that have beset democratic progression. In this pursuit, this article endeavors to shed light on a spectrum of issues that have collectively cast shadows upon the democratic terrain of Pakistan.

Unstable Foundations: Interplay of Political Instability and Democracy in Pakistan-The government's wobbling, the disarray of political factions, and a feeble political culture have birthed a state of political fragility in Pakistan. Pakistan has spent half of its existence engulfed in internal political turmoil. The quandary of political instability poses graver implications in a multiethnic nation like Pakistan, where diverse cultural attributes abound. In the face of instability, individuals feel dissatisfied and impotent, as they lose faith in institutions and prioritize their own interests over the state's, ultimately leading to societal destruction. Underdeveloped nations, such as Pakistan, grapple with the challenges of decentralizing authority, fostering national unity, fostering economic growth, promoting political engagement, and ensuring social welfare. The political landscape in Pakistan has been in disarray since the 2013 elections, with Nawaz Sharif's regime at the helm, resulting in a stumbling economy and a crumbling democracy. The involvement of the Nawaz regime in money laundering has spawned an unstable political structure, dividing the masses, impeding economic and social progress, and projecting a feeble state on the global stage (Rakhshani, 2021).Batool (2023) contends that constitutional liberalism nurtures political stability by establishing a system of justice and the rule of law, delineating a code of conduct for state and governmental institutions, and curbing their authority. However, Pakistan grapples with periodic political instability due to the imbalance of power between the military and the civilian government. Illiberalism grants the military unchecked access to state resources and authority, culminating in the establishment of a deep state within the state. This enables the military to challenge the power of politicians, manipulate the media and the market, and exert control (Batool, 2023).

The stumbling and fragmented nature of political organizations serve as the root causes of political instability in Pakistan. Governments in the country rely on coalition support to attain power, resulting in an incessant struggle to appease all coalition parties. The formulation of both domestic and foreign policies necessitates the backing of all factions within a party, rendering policy formulation a formidable task for the government (Rakhshani, 2021). This organizational void paves the way for the formation of coalition governments that face constant pressure from their partners. Such dynamics significantly impact the processes of internal and external policy-making.

Imran (2022) underscores the imperative of robust public support for the successful implementation of domestic and foreign policies. When political parties function ineffectively, they sow division and exploit public sentiment for their own gain. The political landscape has descended into chaos, with leaders manipulating emotions to further their own interests. Religion remains a sensitive subject in society, and the populace is plagued by a lack of information, rendering them unable to make informed choices between parties. This engenders a chaotic and dependent political landscape.Military rule in Pakistani Politics and its impact on Democratization The military's theatrical prowess has always taken center stage in Pakistan's political arena. For nearly 70 years, the army has molded the ood

nation's security agenda, at times even dictating the very core of governance, with many commanders finding themselves at the epicenter of economic and political might. However, civilian leaders, particularly the prime minister, have recently unleashed their political might, employing the military to fortify their blossoming democratic ideals. This not only quenches the military's thirst for influence but also dampens the likelih of a coup. Nevertheless, the military will strive to retain its significance in the economy and government, all while upholding its historical duty as the country's guardian.

Pakistan bore witness to military rule in 1958 when President Iskander Mirza declared martial law. Gen. Ayub Khan assumed the role of Chief Martial Law Administrator, and following the 1971 war with India, he was succeeded by Gen. Agha Mohammad Yahya Khan (Kashyap, 2022). The inaugural military coup unfolded in 1977 when Gen. Zia ul Haq dissolved the parliament and confined Bhutto to house arrest (Kashyap, 2022). In 1985, Zia ul Haq resigned, and the final military coup occurred in 2007 with Gen. Pervez Musharraf seizing power. In 2010, the National Assembly passed the 18th Amendment of the Constitution, transforming Pakistan from a Semi-Presidential to a Parliamentary Republic in an endeavor to forestall military coups and curtail military influence on decision-making bodies (Kashyap, 2022).

Pakistan stands as a vivid testament to the tragic repercussions of military-dominated administrations. While representative democracy offers a greater promise of long-term political stability, many associate the instability of democratic systems with benevolent dictators. Since the 1950s, Pakistan's military, renowned for its all-encompassing control and instrumental advantages, has been steeped in this conviction. The army has acted upon this condescension, staging coups and officially ruling the nation for half of its existence. In the other half, the military has assumed a more sinister role, exerting control over security and foreign policy, casting an ominous shadow (Butt, 2022).

Military dictators often brandished fear as their weapon, and political elites eagerly collaborated to consolidate their rule and reap economic rewards. This paralyzed the political culture of the state, as political intellectuals defended the military and anointed military dictators as presidents (Butt, 2022). Pro-military politicians launched offensives against their adversaries, fanning conflicts and fostering opposition alliances. The government frequently employed state apparatuses against opposition parties, resulting in the exile and execution of politicians. This trend stifled the growth of the political process and corroded the image of democratic institutions. Efforts are underway to address the root causes of political backwardness, yet the military has eluded culpability. Legislation forms the lifeblood of a nation, and since independence, progress has been impeded by various hindrances (Khalid & Yaseen, 2016). The fundamental purpose of democratic institutions was to enact laws and legislation, but this was eclipsed by presidential ordinances and inherited colonial rules. Amendments were railroaded based on personal whims, with the consent of the majority disregarded. Politicians supported dictators in amending the constitution, granting them carte blanche to pursue personal gain. The military has sought to impose order, whether directly in power or orchestrating events from the shadows. However, the irony lies in the chaos it has sown in its pursuit (Khalid & Yaseen, 2016). The greatest reward of democratic systems lies not in rapid economic growth or progressive social policies, but rather in the certainty that the transfer of power from one government to another will be peaceful and predictable.

Pakistan has endured four military rulers through three military coups, signifying the absence of complete democratic rule in any generation. The military's incursion has led to the people accepting these intrusions and control within the democratic framework. Decades of patronage politics have left Pakistan teetering, with the economy plummeting in the latter half of 2019 and inflation soaring (Kashyap, 2022). This lack of democratic experience and excess exposure to patronage politics directly impact citizens' expectations of a leader, exposing the consequences of Pakistan's democratic inexperience on its citizens' expectations.

Societal Faultline: Ethno-Religious Divides and it’s on Democracy in Pakistan Pakistan pulsates with a tapestry of diversity, boasting an intricate web of ethnic, linguistic, and religious threads. It was once cleaved into five dominant ethnic clusters: the Bengalis, Punjabis, Pathans, Sindhis, and Baluchs. The ethno-national conflicts that plague the nation arise from the profound incongruity between its heterogeneous society and its political institutions. Pakistan's ruling elite has been obstinately averse to embracing the pluralistic composition of its populace, adamantly refusing to relinquish power to any minority or majority faction. This deep-rooted resistance culminated in the birth of Bangladesh in 1971, an irrevocable rupture (Kukreja, 2020).

Since its inception in 1947, Pakistan has grappled futilely with establishing an organic and efficacious covenant among its federating units, despite sporadic advances toward provincial autonomy and devolution. Federalism was enshrined as a cornerstone for Pakistan's

formation in the Lahore Resolution of 1940, yet it has languished in its quest to materialize as a federal state (Kukreja, 2020). The political climate in Pakistan has remained steeped in authoritarianism, unabated by the ostensible presence of federal characteristics in successive constitutions. The tumultuous chapter of ethnic secessionism in East Pakistan failed to yield a recalibrated politics of accommodation and reconciliation between the central authority and the provinces. Instead, the trajectory of centralized authoritarianism persisted following Pakistan's fragmentation, leading to militarized clashes between the state and ethnic groups in Balochistan, as well as in rural and urban Sindh (Siddiqi, 2020). Since 2009, Pakistan has seemingly broken free from the shackles of centralized politics through the 18th Amendment to the Constitution. This amendment not only guarantees the much-needed provincial autonomy but also nurtures a democratic polity adorned with periodic elections and partisan rivalry (Siddiqi, 2020). Nevertheless, ethnic movements continue to reverberate, with a secessionist fervor gripping Balochistan and fervent demands for new administrative units in Sindh, Punjab, and Khyber Pakhtunkhwa provinces. Pakistan's democratic-federal state in transition presents an opportunity for the constructive regulation of ethnic aspirations, albeit paradoxically fueling the urgency for ethnic assertions as the state grapples with the devolution of administrative powers from a deeply entrenched federal bureaucracy to provincial entities (Siddiqi, 2020).

The multi-ethnic fabric of the state poses a formidable challenge to a stable democracy. Advocates argue that consociational democracy offers a viable solution for a deeply fractured society, serving as a balm to alleviate the ailment of political instability (Kukreja, 2020).

Democracy Deferred: The Absence of Democratic Political Culture in Pakistan

The Pakistani government lacks the vibrancy required for democracy, resulting in a feeble democratic framework. Ali Jinnah established a democratic precedent by relinquishing his position as president of the Muslim League, granting the Muslim League the freedom to engage in political endeavors without official interference (Aqdas, 2020). However, Liaquat Ali Khan later disregarded this practice, enfeebling the Muslim League and reducing it to a puppet of the government. The Pakistani democratic system also suffers from military interventions, such as coups in 1958, 1977, and 1999, which enervated democratic institutions and cast a detrimental shadow on constitutional and legal advancements (Aqdas, 2020). Military regimes suffocate freedom of expression, the birth of political parties, healthy competition, and the liberty of press, all of which are crucial ingredients of a democracy. Consequently, democratic values have withered away in Pakistani society, leaving the governmental system bereft of political awareness (Aqdas, 2020).

Political parties in Pakistan are organized public collectives striving for political supremacy, fulfilling three pivotal roles: mobilization, electioneering, and governance. They showcase diverse organizational characteristics and agenda structures (Murtaza, 2023). Party leadership is either personalized or merit-based, often shaped by captivating individuals and transforming into dynastic entities. Pakistan's five major parties, including the Pakistan Muslim League, Pakistan People's Party, and Jamiat Ulema-e-Islam, are dynastic institutions, while the remaining two, Pakistan Tehreek-e-Insaf and the Muttahida Qaumi Movement, continue to orbit around charismatic founders (Murtaza, 2023).

Pakistan's political culture and precarious parliamentary democracy primarily stem from a frail and undemocratic party system. The country's political parties are top-heavy, lacking a middle layer that connects them to the masses. Traditional elites dominate these parties, garnering votes solely based on familial history and social status, rather than their dedication to the communities they claim to represent. Consequently, mainstream parties have stagnated, with the same leaders, voices, programs, and propaganda echoing through the corridors of power. The absence of fresh recruits restricts the entrance solely to the younger generation of traditional elites. The dynastic nature of leadership obstructs the democratization of political parties, a vital prerequisite for the success of any parliamentary system. To truly thrive, a system of checks and balances must be in place, including institutional oversight from organized party systems, a robust opposition, democratic functioning within the party, party discipline, and a clear separation of powers. In Pakistan, these requisites have remained relatively feeble.

Faltering Democracy: The Consequences of Democratic Shortcomings in Pakistan

The downfall of democracy has also birthed a plethora of predicaments, with Pakistan's institutions being debilitated and incapable of flourishing over time. This has transformed Pakistan into a hollow nation, akin to a malnourished body. The country has metamorphosed into an orphan child, reliant on foreign funds, and a breeding ground for terrorist activities. The dearth of democracy has reduced Pakistan to a destitute nation in the eyes of the world, tarnishing its reputation built on lofty ideals.

The frequent disruptions in the democratic process, encompassing military coups and unconstitutional shifts in governance, have engendered political instability and a corrosion of democratic norms and values. This has engendered a sense of uncertainty among investors and impeded economic growth and development. The economy is a treacherous terrain for habitation and commerce, as the general public has fallen prey to terrorist assaults. Foreign investors and traders are hesitant to infuse capital into Pakistan, enfeebling the economy. To invigorate the nation and foster its prosperity, drastic measures must be implemented. Education must permeate from the apex to the base, ensuring equal opportunities for all, as education is the sole conduit to achieve affluence and progress. The absence of genuine political competition and the prevalence of dynastic politics have led to feeble and ineffectual governance, with a culture of nepotism and patronage overshadowing meritocracy. This has resulted in a misallocation of resources, feeble policy implementation, and a paucity of efficient public service delivery, further eroding public trust in democratic institutions. The pervasive corruption and lack of accountability have corroded public trust in the democratic process, fostering a perception of systemic injustice, which in turn fuels social inequality, alienation, and frustration among marginalized groups.

Conclusion-In conclusion, various challenges that have beset the democratic landscape of Pakistan paints a complex portrait of a nation grappling with the multifaceted dynamics of governance. The issues highlighted within this paper, ranging from political instability and military influence to weak civilian institutions and socio-economic inequities, collectively underscore the formidable hurdles that have hindered the seamless development of democracy in the country.Political instability has perpetuated a cycle of uncertainty, undermined the continuity of policies, and engendered a lack of public trust in democratic institutions. The recurring specter of military influence has led to an uneven power balance, stifling civilian governance, and sidelining elected representatives. Weak civilian institutions plagued by corruption and inefficiency have thwarted the state's capacity to effectively address pressing societal challenges.Ethno-religious divides have acted as both a source of strength and friction within the democratic framework. The inability to effectively manage these differences has, at times, led to tensions, conflicts, and disruptions, diverting attention from broader governance objectives. The persistent battle against terrorism and security concerns has frequently diverted focus from vital socio-economic and developmental issues, occasionally resulting in an imbalance between civilian and military authority.Electoral irregularities and manipulation have eroded public faith in the electoral system, potentially tainting the democratic process. Political polarization and a lack of consensus among parties have hindered the effective functioning of governance mechanisms, leading to policy deadlock and disillusionment among the population. Socio-economic inequities, perpetuated by poverty and limited access to basic services, have marginalized certain segments of society, impeding their meaningful participation in the democratic process.

However, it is imperative to recognize that these challenges in Pakistan are not insurmountable. The acknowledgment and exploration of these issues pave the way for a more informed discourse on potential solutions. It is the collective commitment of political leaders, civil society, the military, and the public that holds the key to charting a path toward a more stable and inclusive democratic future for Pakistan.Addressing these challenges demands a holistic approach that encompasses institutional reforms, transparent electoral processes, bridging socio-economic gaps, nurturing a culture of political inclusivity, and ensuring civilian supremacy. The lessons drawn from the analysis of these problems can serve as a foundation for constructive change. Ultimately, the resilience and adaptability of Pakistan's democracy will be defined by its ability to transcend these challenges, embracing democratic values while finding common ground among its diverse populace.

****

References

1. Aqdas, T. (2020). The Dilemma of Democracy: Why has Pakistan Failed as a Democratic State? *Modern Diplomacy*. Retrieved from https://moderndiplomacy.eu/2020/09/10/the-dilemma-of-democracy-why-has-pakistan-failed-as-a-democratic-state/
2. Batool, F. (2023). Political crisis in Pakistan: is democracy responsible? *The Loop*. Retrieved from https://theloop.ecpr.eu/political-crisis-in-pakistan-is-democracy-responsible/
3. Butt, A. I. (2022). Why Pakistan always seems on the brink of collapse. Retrieved from https://journalofdemocracy.org/why-pakistan-always-seems-on-the-brink-of-collapse/
4. Imran, M. (2022). Political Instability in Pakistan: Causes and Consequences. *UOS Journal of Social Sciences & Humanities*, *6*(1).
5. Kashyap, S. (2022, January 12). 'Pakistan's rise to Military Rule and its Political and Societal degeneration.' Retrieved from https://www.claws.in/pakistans-rise-to-military-rule-and-its-political-and-societal-degeneration/
6. Khalid, I., & Yaseen, Z. (2016). Role of Military as the Guardian of Democracy in Pakistan. *Journal of Political Studies*, *22*(1).
7. Kukreja, V. (2020). Ethnic Diversity, Political Aspirations and State Response: A case study of Pakistan. *Indian Journal of Public Administration*, *66*(1), 28–42. https://doi.org/10.1177/0019556120906585
8. Murtaza, N. (2023). Pakistani political parties and the democratic deficit. *East Asia Forum*. Retrieved from https://www.eastasiaforum.org/2016/04/20/pakistani-political-parties-and-the-democratic-deficit/#:~:text=Since%20independence%20in%201947%2C%20Pakistan%20has%20experienced%20democracy,unelected%20institutions%20like%20the%20military%20to%20derail%20democracy.
9. Parvez, F. Pakistan's Military-Democracy complex. Retrieved from https://worldview.stratfor.com/article/pakistans-military-democracy-complex
10. Rakhshani, B. (2021, June 14). Political instability and Pakistan. Retrieved from https://www.pakistantoday.com.pk/political-instability-and-pakistan/
11. Siddiqi, F. H. (2020). Ethnic Movements and the State in Pakistan: A Politics of Ethnicity Perspective. In M. Weiner (Ed.), *Routledge Handbook of Race and Ethnicity in Asia*. Routledge.

हिंदी-उर्दू विवाद और मुसलमान लेखकों पर उसका प्रभाव

हृदय कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री अरविंद कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश-*जब हम हिंदी साहित्य के विकास क्रम को देखते हैं तो पाते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति तक कोई मुसलमान लेखक हिंदी में नहीं दिखता जबकि रीतिकाल तक उनकी उपस्थिति ठीक-ठाक है। इंशा अल्ला खाँ तथा उनकी रचना 'रानी केतकी की कहानी' अपवादस्वरूप मिलती है। मुसलमान लेखकों की अनुपस्थिति का कारण संभवतः हिंदी-उर्दू का विवाद रहा है, जिसकी ओर आचार्य शुक्ल का इशारा था। रामविलास शर्मा लिखते हैं कि "सन् सत्तावन के बाद अंग्रेजों ने हिंदी-उर्दू समस्या को जिस तरह उभारा वही उनकी फूट डालो और राज करो की नीति का अभिन्न अंग थी"। हिंदी-उर्दू विवाद का स्रोत देवनागरी लिपि और फारसी लिपि के प्रयोग से संबंधित था।*

बीज शब्द-हिंदी साहित्य, देवनागरी लिपि, फारसी लिपि, हिंदी-उर्दू विवाद, हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य

भूमिका-आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में सूफी कवि नूर मोहम्मद के हिंदी भाषा में रचना करने पर तथा इस कारण इन्हें सफाई देने का उल्लेख किया है। इस पर आ. शुक्ल की टिप्पणी है कि संवत 1800 तक आते-आते हिंदी से किनारा करने लगे। जब हम हिंदी साहित्य के विकास क्रम को देखते हैं तो पाते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति तक कोई मुसलमान लेखक हिंदी में नहीं दिखता जबकि रीतिकाल तक उनकी उपस्थिति ठीक-ठाक है। इंशा अल्ला खाँ तथा उनकी रचना 'रानी केतकी की कहानी' अपवादस्वरूप मिलती है। मुसलमान लेखकों की अनुपस्थिति का कारण संभवतः हिंदी-उर्दू का विवाद रहा है, जिसकी ओर आचार्य शुक्ल का इशारा था।

कृपाशंकर सिंह की एक महत्वपूर्ण पुस्तक- 'हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी: हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता और अंग्रेजी राज' (1800-1947), इस संदर्भ में उल्लेखनीय पुस्तक है। इसमें लेखक ने अंग्रेजी शासन की नीति के फलस्वरूप हिंदी-उर्दू विवाद को हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य में परिवर्तित की जाने की प्रक्रिया का वर्णन किया है। संभवतः हिंदी भाषा का संबंध हिंदू धर्म से जुड़ जाने के कारण कोई मुसलमान लेखक हिंदी में रचना करने में संलग्न नहीं हुआ।

"हिंदी-उर्दू दो अलग-अलग ज़ुबानें हैं, इस पर जितना ज़ोर अंग्रेजों ने दिया, उतना मुसलिम लेखकों ने भी नहीं दिया। ...मुस्लिम राजनीतिज्ञों और बुद्धिजीवियों को उर्दू को अलग और स्वतंत्र मानने के फायदे अंग्रेजों द्वारा सुझाए गए थे। अन्यथा क्या कारण है कि मुस्लिम शासनकाल में तो हिंदी को उर्दू से अलग नहीं समझा गया। गालिब और मीर जैसे उर्दू के महान शायरों ने भी इनमें कोई फर्क नहीं किया, दोनों शब्दों को समानार्थी मानकर ये कवि चले, पर ब्रिटिश शासन के कायम होते ही एक ही ज़बान को व्यक्त करने वाले ये शब्द रातों-रात दो अलग ज़बानों के प्रतीक बन गए"।[1]

रामविलास शर्मा भी इस बात को 'भाषा और समाज' पुस्तक में इस प्रकार बताते हैं—*"अंग्रेजीराज कायम होने के समय उत्तर भारत में हिंदुओं और मुसलमानों की एक सामान्य भाषा थी जो कठिन उर्दू से भिन्न थी और जो शहर के लोगों की सांस्कृतिक एकता की प्रतीक थी। धर्म के आधार पर दो कोमों और भाषाओं का अभी सवाल ना था"।*[2] फूट डालो और शासन करो की नीति के अनुरूप अंग्रेज इस बात पर जोर देते थे कि हिंदी और उर्दू दो अलग भाषाएं हैं तथा हिंदू और मुसलमान दो भिन्न राष्ट्र (नेशन) हैं क्योंकि ये दोनों सांस्कृतिक दृष्टि से भिन्न हैं।

रामविलास शर्मा लिखते हैं कि *"जो एक सांस्कृतिक भेदभाव की बात थी उसे गिलक्राइस्ट ने बढ़ा-चढ़ाकर धार्मिक भेदभाव की बात बना दिया। अवध, ब्रज, बुंदेलखंड और भोजपुर आदि जनपदों के गांवों में हिंदू और मुसलमान अपने-अपने यहां की भाषाएं बोलते हैं, धर्म के कारण उनमें कहीं भी अलगाव नहीं है, इस बात को इन्होंने (गिलक्राइस्ट) ने बिलकुल भूला दिया।"*[3] *"वैसे हिंदी-उर्दू का पूरा छंद पढ़े-लिखे और बौद्धिक हिंदू का छंद था। दूर—राज के बाशिंदे से*

चाहे वे मुसलमान रहे हों या हिंदू, इस झगड़े से कोई वास्ता ना था। वहां ये दोनों कौमे एक ही मिली-जुली ज़बान बोलती थी, जो वहां की स्थानीय बोली थी। यह इसलिए भी था कि देहातों के बहुसंख्यक मुस्लिम समुदाय पहले तो हिंदू ही था।"[4]

1857 के सिपाही विद्रोह में हिंदू-मुस्लिम एकता ने अंग्रेजी शासन को अपनी नीति पर पुनःविचार करने के लिए प्रेरित किया। रामविलास शर्मा लिखते हैं कि *"सन् सत्तावन के बाद अंग्रेजों ने हिंदी-उर्दू समस्या को जिस तरह उभारा वही उनकी फूट डालो और राज करो की नीति का अभिन्न अंग थी"।*[5] हिंदी-उर्दू विवाद का स्रोत देवनागरी लिपि और फारसी लिपि के प्रयोग से संबंधित था। *"निचली कचहरियों और निचले स्तर के सरकारी कामकाज में कौनसी लिपि अपनाई जाए, इसी सवाल से हिंदी-उर्दू की लड़ाई शुरू होती है। इसके पहले हिंदी-उर्दू को लेकर हिंदू-मुस्लिम झगड़े अस्तित्व में नहीं थे। पढ़े-लिखों को सरकारी नौकरियों का लालच दिखाकर अंग्रेजों ने हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य में एक नया अध्याय जोड़ा था।"*[6] इस प्रकार न केवल हिंदी और उर्दू के बीच विवाद उत्पन्न हुआ अपितु हिंदू और मुस्लिम दोनों संप्रदाय स्वयं को सरकारी नौकरियों में एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखने लगे।

"अब तक निचले स्तर के अधिकांश कर्मचारी मुस्लिम ही थे। शुरू से ही चले आ रहे थे। फारसी में और बाद में फारसी लिपि में लिखी उर्दू में ही सरकारी कामकाज होता था, जिसमें अधिकतर मुसलमान खपे हुए थे। उनका स्थान पर्याप्त संख्या में हिंदू कर्मचारी तभी ले सकते थे, जब भाषा नीति में परिवर्तन लाया जाता। अंग्रेज इसी विचार से भाषा नीति में कुछ फेर बदल के बारे में सोच रहे थे। सत्तावन की क्रांति ने उस सोच को और तेज कर दिया"।[7] इस प्रकार भारतीय समाज के साहित्यिक क्षेत्र में हिंदी-उर्दू के विवाद ने चिंगारी के रूप में हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य की आग का रूप धारण कर लिया जिस आग में घी डालकर उसे और प्रज्वलित करने का काम अंग्रेजों की भाषा नीति ने किया।

कृपाशंकर सिंह अपनी पुस्तक 'हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी' में हिंदी-उर्दू विवाद का प्रभाव उसके समर्थकों पर किस रूप में पड़ा इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार की है- *"1867 में बनारस के कुछ गणमान्य हिंदूओं ने उर्दू के स्थान पर नागरी लिपि को अपनाए जाने की मांग की। 1869 में ही सर सैयद अहमद खाँ ने मुसलमानों की एक सभा में यह घोषणा की कि अपनी भाषा (उर्दू) की रक्षा के लिए मुसलमानों को संगठित हो जाना चाहिए।"*[8] दोनों ही समुदायों के नेताओं ने अपनी-अपनी कौम को भिन्न भाषा से जोड़ते हुए उसे सांप्रदायिक रंग दे दिया।

इस प्रकार उपयुक्त विचारों ने हिंदी-उर्दू विवाद को हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य के रूप में बढ़ावा दिया। परिणामतः *"उर्दू के समर्थकों (मुसलमानों) को हिंदी प्रतिद्वंद्वी के रूप में दिखाई दी। कुछ लेखकों को यह अपनी संस्कृति पर ही हमला दिखाई दिया। अंग्रेजों ने अपनी भाषा नीति से बहस को और बढ़ावा दिया और उसमें दोनों तरफ से ऐसी बातें कही जो उचित न थी।"*[9] आगे क्या हुआ हम सब जानते हैं। हिंदी-उर्दू विवाद, हिंदू-मुस्लिम रिश्ते के बीच टकराव का एक स्थाई कारण बना रहा जब तक की भारत-विभाजन संपन्न ना हो गया।

प्रेमचंद पूर्व के उपन्यासों में मुस्लिम परिवेश

भारत एक सेक्यूलर प्रजातांत्रिक गणराज्य है। मुसलमान भारत की सबसे अधिक अल्पसंख्यक हैं। भारतीय जीवन में मुसलमानों के अस्तित्व को झुठलाया नहीं जा सकता। किंतु खेद की बात है कि प्राचीन मध्यकालीन हिंदी साहित्य में मुस्लिम जीवन का चित्रण ना के बराबर हुआ है। मध्यकालीन मुस्लिम रचनाकारों ने भी मुस्लिम समाज के सांस्कृतिक परिवेश का महत्वपूर्ण चित्रण नहीं किया है।

आधुनिक युग में भी हिंदी साहित्य में जीवन की यथार्थता का विशेष चित्रण हो पाया है। आधुनिक हिंदी साहित्य, विशेषतः कथासाहित्य में जीवन का व्यापक चित्रण हुआ है। भारतेंदु काल के पूर्व हिंदी कथा साहित्य में कोई निश्चित परंपरा नहीं रही। उस समय की रचना 'रानी केतकी की कहानी', 'राजा भोज का सपना' आदि पुराने ढंग की कथाएँ थीं। संस्कृत से अनुदित पौराणिक और धार्मिक कथाओं तथा उर्दू-फारसी के परंपरागत किस्सों- 'किस्सा चार दरवेश', 'किस्सा हातिमताई', 'किस्सा साढ़े-सात यार' तक ही उस समय का कथा-साहित्य सीमित था। हिंदी उपन्यास से पहले उर्दू में उपन्यास विधा का विकास हुआ। उर्दू उपन्यास डिप्टी नजीर अहमद हैं जिनका पहला

उपन्यास 'मिरातुल अरुस' 1869 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास एक सुधारवादी सामाजिक उपन्यास है जिसकी मुख्य प्रवृत्ति आदर्शवाद की नींव पर टिकी है। हिंदी के प्रारंभिक उपन्यासों की भी यही प्रवृत्ति है। ईश्वरी प्रसाद और कल्याण राय लिखित 'वामा शिक्षक' (1872), श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' (1877), राधाकृष्ण दास लिखित 'निस्सहाय हिंदू' (1881), लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरू' (1882), आदि इस प्रवृत्ति की उल्लेखनीय कृतियां हैं। हालांकि आ. शुक्ल ने 'परीक्षा गुरू' को हिंदी का पहला उपन्यास माना है, लेकिन उपरोक्त रचनाएं भी भारतेंदु युग में महत्व रखती हैं।

गोपालराय के अनुसार, *" 'निस्सहाय हिंदू' हिंदी का पहला उपन्यास है जिसमें मुस्लिम समाज का चित्रण हुआ है। पहली बार मुस्लिम पात्रों का समावेश 'निस्सहाय हिंदू' में देखने को मिलता है"।*[10] इस उपन्यास का केंद्रीय विषय 'गौवध निवारण' है।भारतेंदु युगीन महत्वपूर्ण उपन्यासों में 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' का भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है जिसका उल्लेख आ. शुक्ल ने अपने इतिहास में किया है। इन उपन्यासों में मुसलमानों के प्रति लेखक की धारणा पर गोपालरोय की टिप्पणी है- *"देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों में मुसलमान पात्रों को दुष्ट, दगाबाज, चरित्रहीन आदि रूपों में ही चित्रित किया गया है। बांग्ला में अनुदित उपन्यासों में तो सामान्य रूप से मुस्लिम पात्रों का यही रूप देखने को मिलता है। यह उस काल के सामान्य हिंदू मनोवृत्ति थी।"*[11]

प्रेमचंदयुगीन कथासाहित्य और मुस्लिम परिवेश-हिंदी कथासाहित्य में प्रेमचंद का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना है। उनसे पूर्व हिंदी कथासाहित्य के पाठक या तो सनातनधर्मी प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति के ऐतिहासिक रोमांसों में उलझे हुए थे या तिलिस्मी और जासूसी के आश्चर्यजनक करिश्मे देखते रहे थे। प्रेमचंद पहले लेखक हैं, जिन्होंने हिंदी कथा साहित्य को वास्तविकता की ज़मीन पर लाकर खड़ा कर दिया। उनका लक्ष्य केवल पाठकों का मनोरंजन करना ही नहीं अपितु उन्हें समसामयिक समस्याओं से अवगत कराना भी था।

प्रेमचंद के कथा साहित्य में मुस्लिम परिवेश के संबंध में गोपालराय लिखते हैं, *"उन्होंने हिंदी उपन्यास को उस संकीर्ण विचारधारा से मुक्त कराने का प्रयास किया जिसके तहत मुसलमान पात्रों को काले और हिंदू पात्रों को सफेद रंग से चित्रित किया जाता था। उन्होंने अपने को देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद आदि उपन्यासकारों से ना जोड़कर भारतेंदुयुगीन लेखकों, विशेषकर राधाकृष्ण दास से जोड़ा। जिन्होंने पहली बार 'निस्सहाय हिंदू' में साम्प्रदायिक सौहार्द का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया था।"*[12]

प्रेमचंद के उपन्यासों में ऐसे पात्र मिलते हैं जो हिंदू और मुसलमान होने से पहले मनुष्य होत हैं और संघर्ष रोकने के लिए अपनी जान की बाजी लगा देते हैं। 'कायाकल्प' उपन्यास का 'चक्रधर' ऐसा ही पात्र है। इसका दूसरा पात्र ख्वाजा महमूद अपने हिंदू मित्र की बेटी के लिए अपने बेटे तक को माफ नहीं करता। गोपालराय के अनुसार, *"मुसलमान पात्रों को प्रेमचंद ने जिस तरह तटस्थ सहानुभूति प्रदान की है, वह उनकी मानवीय रचना दृष्टि का परिचायक है।"*[13]

निष्कर्ष-खेद की बात है कि इस्लामी धर्म और संस्कृति के इतिहास के अध्ययन की परंपरा प्रेमचंद ने चलाई थी, उस पर हिंदी के आगामी कथाकार विशेष अग्रसर नहीं हुए। स्वाधीनता से पूर्व के हिंदी उपन्यासों में कोई उल्लेखनीय कृति नहीं है जिसमें मुस्लिम जीवन और संस्कृति का अंकन विश्वसनीय ढंग से हुआ हो, लेकिन कुछ कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय बन पड़ी हैं।प्रेमचंदोत्तर कथा साहित्य में तथा गैर-मुस्लिम कथाकारों के कथा साहित्य में मुस्लिम जीवन और संस्कृति के चित्रण का कोई विशेष प्रयास नहीं पाया जाता। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों का मुस्लिम परिवेश से कोई संपर्क नहीं रह गया था। पुराने कथाकारों का फिर भी उर्दू भाषा और जीवन से निकट का संबंध था। 'नई कहानी' के दौर के कथाकार इस संबंध सूत्र से कटे हुए से हैं, जिसकी क्षतिपूर्ति शानी, राही मासूम रज़ा आदि जैसे कथाकारों ने की।

****

संदर्भ:

कृपाशंकर सिंह, हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी, पृ. 21
रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, पृ. 316
रामविलास शर्मा, भारत की भाषा-समस्या, पृ. 317
कृपाशंकर सिंह, हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी, पृ. 11
रामविलास शर्मा, भारत की भाषा-समस्या, पृ. 319
कृपाशंकर सिंह, हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी, पृ. 12
कृपाशंकर सिंह, हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी, पृ. 29
रामविलास शर्मा, भारत की भाषा-समस्या, पृ. 304
कृपाशंकर सिंह, हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी, पृ. 11
गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. 80
गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. 45
गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. 138
गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. 129

कुँडुख कत्था नू पुरखा कत्थपण्डी गही महबा

हेमन्त कुमार टोप्पो
शोधार्थी
जनजातीय एंव क्षेत्रीय भाषा विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

कुँडुख कत्था नू पुरखा कत्थपण्डी गही अकय महबा रई। इंदितिम नम्हय उरमी किसिम गही नेत नेग, धरम-करम, नलख द्यतम, नेगचार, बरनिका (इतिहास) गुटठी अखतारई। कुँडुख कत्था पुरखा पत्थपण्डी तिम कमरकी रई, अरा कत्थपण्डी कुँडुख कत्था तिम बनचकी रई। एड़ों गही नता अकय गड्डी रई। कत्था कच्छनखरनुम-2 कत्थपण्डी इदातो बकलूरिया बनचा केरा कत्थपण्डी ती कत्था मलता भखा दव अरा बड़ियर मंजा केरा।

कुँडुख कत्थपण्डीन अखना ती मुंध नमागे 'पुरखा बक गही माने बुझुरना चाड़ रई। पुरखा आल बआ खने एन्ने पच्चा आलर एका ओत्तर इन्ना मल्लर इदातो पचबालर। प्रसन्नमुख उरांव पुथी पृष्ठ-30 नू बोनिफास तिर्कीस पचबालर गही पत नू बाचका रअदस "केवल वे ही जो सफल पारिवारिक जीवन व्यतीत करने के बाद प्राकृतिक ढंग से मृत्यु को प्राप्त होते है पचबालर या पूर्वज प्रतिष्ठा के पात्र होते है।" पुरखा परिया बआ खने थाह मनी का पचबालर गही परिया मलता बेड़ा। ई लेखआ पुरखा कत्थपण्डी गही माने मंजा पचबालर गही दव-दव लिंगका कत्था। ई लेखआ पुरखा कत्थपण्डी आलर गही जिया ती उरूखका एन्ने दव कत्था तलीं एकदा सहजेम अरा तान-तानिम बई ती उरखी काली। एन्ने कत्था ओन्टे बई ती नन्ना बई मन्नुम पीढी दर पीढी परदनुम काली। एन्ने कत्थपण्डी गही टूडुस मलता कमउस एकअम ओन्टे आलस का आली माल रई पहें ईद सवसे खोडहा गही खुरजी मनी काली। भले इदिन एकअम ओन्टे आलस दिम बाचका मलता टूडका रअदस पहें ईद खोड़हा गही खुरजी दिम मनी।

कुँडुख पुरखा कत्थपण्डी नू नेत-नेग, धरम-करम, नलख-घतम, ओन्ना-मोखना, उज्जना-विज्जना गही संगे-संगे सामाजिक अरा राजनीतिक उज्जना गही छपा ईथरिई, इदातों पुरखा कत्थपण्डी तो मुद्ध रूपे नू जिया ती उरूखका दव कत्था दिम रई। एडपा पली ता उज्जना-विज्जना नू नता गुट्ठी ही हूं झलक कत्थपण्डी नू इथिरई। इबड़ा गुट्ठी बिहइतन एर नाम बआ ओगदत्त का पुरखा कत्थपण्डी नम्हय खोड़हा अरा साधारण आलर गही उज्जना घी ओन्टे परकला तली। प्रसन्नमुख उरांव नामे पुथी पृष्ठ-39 नू बोनिफास तिर्कीस इदि गही पत्त नू बाचका रअदस का उरांव सहज और निश्चित प्रकृति का होता है परन्तु जीवन का मूल्य वह अच्छी तरह समझता है वह कोई दुस्साहसी काम कभी क्यों न करें चौकस रहा करता है। कहावत है डहरे एकोय होले संगे-संगे एक्के, एकसआनिम ओककोय होले कप्प-एरके की ओक्कके, नन्नर गुइया कालोय होले चिहुटती रअके।" ई लेखआ कुडुख कत्थपण्डी ओन्टा एन्ने आलो तली एकदा मेरखा मइया ती खतरिई अरा खेलेल ता घांसी लेखआ कुंदी अरा परदी, ईद तंगआ पहटा ता अम्म अरा खज्ज वेसे एमबा अरा दव महकन चिई।

पुरखा कत्थपण्डी गही बिहइत -

1. पुरखा कत्थपण्डी आलर गही जिया ती सहजेम अरा अचकम उरूखका बई ता कत्था तली।
2. ईद भरसक टूडका मल रई अरा ओन्टे बई ती नन्ना बई मन्ने परदनुम काली।
3. एन्ने दव कत्था गही टूडुस मलता बऊस गही थाह मल मनी।
4. एन्ने कत्था खोड़हा गहीं नेत-नेग गही आएना बेसे मनी।
5. एन्ने कत्था बअना अरा मेनना नू अकय दव लग्गी।
6. पुरखा कत्थपण्डी आलर गही पत्तआना, नेगचार, परब-तिहार, नलख, धंधा ती होतारई।
7. एन्ने कत्था नू कत्थआइन अरा विज्ञान गही महबा माल र-ई।
8. कुडुख पुरखा कत्थपण्डी प्रकृति इदातो नम्हय हेदे ता ताका फुली अरा खोड़हा गही नलखन दहदर ननी।

अक्कु इदिन नाम जुदा-जुदा ननर ठअकम बुझुरओत ।

1. पुरखा खीरी गही रूपे नू -

नम्हय कुँडुख खोड़हा नू ढेर पच्चा-पच्चा खीरी रई एकदन नाम कत्थपण्डी गही रूपे नू टूड़ा-बचआ अरा अखआ लगदत्त। "करमा-धरमा नामे पुरखा खीरी रई एकदन नाम करम परब गही बेड़ा नू मेंदत्त। ई खीरी नामन दव डहरेन इदई। दव नलख ननोत होले नमागे दव खंजपा खक्खरोओ मलदव ननोत होले मलदव मनो। एन्नेम अहलाद तिर्कीस गही टूड़का पुथी पृष्ठ-9 " कुँडुख पुरखा खीरी" पुथी नू खीरी रई चन्दो अरा बीडी गही खीरी। ई खीरी नू लिंगका रई का बग्गे हेडेम-जेड़ेम मन्ना ती उन्दुल चींखना मनी। चन्दो अरा बीडी सहिया जोड़ोरका रअनर। खुबेम हेडेम जेडेम मना लगियर। उन्दुल एने अकलक मनी का अउला तीं एड़ों झनर दोकहर मंजर केरर अरा इन्ना गूटी एड़ो झनर ओन्द संगेम मल रअनर।

"कुँडुख कत्थडण्डी अरा खीरी" पुथीनू एडमंड टोप्पोस खीरी खूजका रअदस। अन्नु असुरर अरा लोधरर" नामे खीरी नू आर धरमेस गही कत्थन अरा पेसकन मल मेन्नर अरा आर गही जिया चाइल काली। धरमेस गही पेसकन मेंजका होले आर बछरोओर कालोर पहकन।

एन्नेम कएनो पुरखा खीरी रई एकदा नमन इन्ना ता उल्ला नू हु दव डहरेन एदना गही नलख ननी।

2. पुरखा डण्डी गही रूपे नू -

नम्हय कुडुख कत्था नू ढ़ेर बग्गे पुरखा डण्डी रई एकदा नमन तंगआ नेत -नेग धरम-करम, बरनिका (इतिहास) गुटठी तिंगी।

कत्थसोर पुथी नू पंडित आयता उरांवस गही टूडका डण्डी रई - अना अदी मुंजुरना मलका, निनिम घरमे रअदय बंगायो-2, उरमीनिम एरा लगदय, उरमीगेम जोड़गर रअदय

कोड़ा-कोडा रअदय बंगायो-2

व्याख्या :-ई डण्डी नू घरमेसिन धइन बाचका रई अरा आस ती गोहरारका रई, एन्देरगे का धरमेसिम उरमीन कमचस अरा एरा-खोजा, परदआ लगदस, डण्डी नू धरमेस ती पत्तआनन (विश्वास अरा आस्था) एदाचका रई। " प्रसन्नमुख उरांव पुधी पृष्ठ-45 नू वोनिफास तिर्कीस ओण्टे डण्डी टूडका रअदस "भइया वहिन उरखर कोय, सिरा-सिता नाले नू) रहचर ककडो लाता एडपा कोय, सिरा सिता नालेनू रहचर ।।

कुँडुख पुरखा कत्थण्डण्डी' पुथी पृष्ठ-11 नू डी० नारायण भगतस एंड्ता खेदहा नू पाड़का रअदस -

धुमकुडिया जोख एड़पा मना लगिया, जोख एडपा लूंरकुडिया मना 3 लगिया ।।

कत्थडण्डी नू तिंगका रई का धुमकुडिया नम्हय कुँडुख खोड़हा ता अकय महवा जोगे अड्डा तली एका अइया जोखर-पेल्लर लूर-अंकिल खक्खनर।

3. लीला (नाटक) गही रूपे नू -

अन्नेगा लीला गही कुन्दरना गही पत्त नू कुडुख कत्था नू बग्गे थाह मल मनी, पहें, एकअम विशेष बेडा नू परब-तिहार, बेंजा-काजे नू इदिन एरागे खक्खरिई। बेडा आलारिन अलखतआगे मलता रिझावआगे लीला ननताराई। आल बेंजा नू मुक्कर बरात बिदा मनो बीरी छया भया मन्नर मलता जॉखर पेल्लो बनअर छया भया मन्नर इबडा गुड्डी लीला गही नमुद तली। कुडुख खोडहा नू अरखी झरा अरा अंधविश्वास गुट्ठी बग्गेम मनी। इंदिन नकल ननर लीला नही रूपे नू बेडा सिरे एदताराई। "अयंग जिया' नाटक पुथी नू पियुस लकड़ास ओण्टे कुडुख एडपा नू निशा अम्म गही करने एड़पा बिगड़ारना अरा अयंग गही दव धोख अरा सहना-लहना ती एड़पा बनई अदिन एदाचका रई।

4. सन्नी-सन्नी, छितरारका कत्था गही रूपे नू -

नम्हय पुरखर कत्था-कत्था नू एन्ने सन्नी-सन्नी मुंदा दव-दव कत्थन बअनर चिअनर एकदा सवसे खोडहा गे दव अरा मानी महबन तिंगी। एन्नेम कहुता मलता बंको कत्था, बई-तुर्रा, बुझवइल, खद्द बेचना गही रूपे नू अखआ ओंगदत।

" कुडुख कत्थआइन अरा कत्थटूड" पुथी पृष्ठ-51 नू चौठी अरा महावीर उरांव गर टूडका रअनर-कुदोय होले बेदोय,

ओककोय होले खक्खोय

इतू लिंगका रई का एकअम लूरन सिखरआगे अरा धरआगे बेडा चिअना अकय चाड मनी। कुदोत होले बेद्दोत, ओककोत तबेम खक्खोत। ईद-गा मानी कत्था तली लूर खकारना अड्डा नू काना मनो अरा असन ओक्कना मनो होलेम लूरगर मना ओंगदत।

कुडुख बुझुरनखरना बुईतुर्रा अरा बंको कत्था' पुथी पृष्ठ-63 नू इन्द्रजीत उरांवबस ढेर बग्गे कहुतन, बैंको कत्थन, बई-तुर्रा अरा बुझुरनखरनान खोड्चका रअदस।

"दव नलखतिम दव खंजपा खक्करिई"

दव नलख ननोत, मेहनइत ननोत होले नमागे दव खंजपा खकखरोओ दिम। खोडहा गे एन्ने कत्था अकय महबा उइयी।

कड़मा एसरना

ईद ओन्टे बई तुर्रा तली इदि गही माने मनी तबाह मन्ना। एकअम कत्थन सोझे मल बअर घुमावअर बअना मनी पहें एकअम आलर चाडेम बुझुरनर कानर।

"खन्न एखना' इदि गही माने मनी सथारना। खन्न ओन्टे नम्हय देह ता एन्ने अंग तली एकदन मुच्चे मलता मिंखे होलेम सथारका बेसे लग्गी। अंबगे आराम नन्नन का सथारना खन्न एंखना अबलर एन्नेम कएनो बुई-तुरी रई एकदा नम्हय कुँडुख कत्थन दव कमई, इदिन नाम पुरखा कत्थपण्डी गही रूपे नू हूं अखदत।

"कुडुख कत्थआइन अरा कत्थटूड' अरा कुडुख बुझुरनखरना, बुईतुर्रा अरा बंको कत्था' पुथी नू बुझवाइल हूं दूर बागे टूडका रई एकदन नम्हय पुरखर बेड़ा-बेड़ा नू बाचका रहचर- अदाकेरा इदा बरचा

इदि गही माने मनी नजइर। नजइर ओन्टे एन्ने आलो तली एकदा तुरथेम इसानिम रई अरा तुरथेम गेच्छम चइल काली इंदिनिम बअनर अदा केरा इदा बरचा। अखडा नू का एकअम पिण्डा नू ओककर आलर एंड खोडहा नू मनर बुझुरनखरनान बाच नखरनर। इदि ती मुद्दो गही कसरत मनी दिव संगे संगे कत्था बाच नखरना ती पुना पुना बक बरई। आलर गही लूर अकिल मन्ना गही थाह मनी। इंद हूं नम्हय कुँडुख कत्थन परदआना नू अजम संगे चिई।

"कुट्टका चोट्टो खेखलन तुरई"

इदी गही माने उसांगी तली। गोहला उयागे अरा नगद उगतन खुपटआगे उसांगी घी चाड मनी अरा अदिन / गरम ननर की धारे कमना मनी होले नगद खुपई चोट्टोन कुडा खने गा खिई काली पहें एकासे खेखलन तुरई। इदिन बुझरआगे एन्ने कत्था बाचका रई। एन्ने कत्था लूर बुद्धिन बढाबई संगे-संगे आलर गही जियन थिराबई इदिन नाम मनोरंजन नन्ना बआ ओंगदन्त।

एन्नेम पुरखा कत्थपण्डी नू खद्द बेचना मलता बेचतआना डण्डी गुठी हूं रई। इदिन इयया ईंगे जुदा टी तेंगताराई का इदि गही विशेष रागे मल्ला। एकअम साहे डण्डी संगे इदि गही रागे मल जुटरिई।

बिण्डो बीसागे संगे चिआ ददा

संगे चिआ

डहरे नू लकडा रई ददा कड़ा रई।

खद्दर गही ई डण्डी भले बेचना तली. मुंदा ई खोड़हा गे दव कत्थन तिंगी। ओन्टे सन्नी कुक्कोय खद्द तंग ददस ती गोहराराई का एंगागे पेठ बिण्डो बीसागे काना र'ई। डहरे नू अंज खंज टोड़ग परता रई, अझ्या लकड़ा घी इलिचका रई। एंगन संगे चिआ होले दव कुना कालोन बरओन। खेखेल ता ओरमा आलर गे एक दूसरर गही सहाड़ा गही चाड़ मनी एकअम मला एकअम उल्ला, एकसआनिम हूं चाड़ मनी दिम। सहाडा होअना अरा सहाडा चिअना अकय चाड़ रई।

एन्नेम कुँडुख पुरखा कत्थपण्डी नू ढेर बग्गे दव दव कत्था रई एकदा नम्हें कुँडुख कत्थन नगद कमआ लगी अरा दहदर नना लगी। अंवगे कत्थन/भाखन परदआगे पुरखा कत्थपण्डी इदातो पचबालर गही तिंगका मलता बाचका कत्था चाहे आद एकअम रूपे नू रई, आदि गही अकय चाड़ रई। इंदिन बुझुरना, अखना अरा तंगआ बोलचाल नू व्यवहार नू ओन्दोरना अकय चाड़ रई, होलेम नम्हय खोड़हा परदो, भखा परदो, कत्थपण्डी परदो अरा नाम हूं परदोत।

****

किसान विमर्श की महागाथा उपन्यास ढलती साँझ का सूरज : मधू कांकरिया

प्रा.डॉ. एकलारे चंद्रकांत नरसप्पा
सहा.प्राध्यापक तथा शोध निर्देशक
महात्मा ज्योतिबा फुले महाविद्यालय,
मुखेड त.मुखेड जि.नांदेड

प्रस्तावना :-भारत देश में किसान को खेती के माध्यम से उपजीविका का महत्वपूर्ण साधन उपलब्ध होता है । किसान इस देश में रीड की हड्डी है । वह स्वयं भूखा रहकर भी अन्य लोगों को भरपेट ख़ाना खिलाने में समाधान मानता है। सामाजिक समता और न्याय की अपेक्षा में जिनेवाले इस वर्ग को सुख , शांति , समाधान के पल मिलने के बज़ाए हर समय दुत्कार , प्रताडना , दुख , यातनाएँ झेलने के लिए विवश किया गया है। समाज में किसान की आशा , आकांक्षाएँ बहुत कम होती है। जिनमें घर , भोजन , निवास , शिक्षा , आरोग्य के साथ - साथ बेटी को सुखसे ससुराल बिदा करना चाहता है। इन प्राथमिक आवश्यकताओं के प्रतिपूर्ति के अलावा उपेक्षा का शिकार किसान का हुआ है । जिसके अंतर्गर्भ में अनेक पीड़ा को झेलकर भी चेहरे पर सदैव हँसी दिखाता है। मनुष्य की वेदना जब अपनी सीमा से परे निकल जाती है तब वह आत्महत्या का सोचने लगता है । जो भारतीय " कृषी संस्कृति " के लिए बहुत बड़ा कलंक है । किसान की आत्महत्या होना आम बात नहीं , फिर भी सोचने के लिए मजबूत करनेवाला विषय , प्रश्न है । जो पुरोगामी महाराष्ट्र के मराठवाडा , विदर्भ में इसके परिणाम अधिक मात्रा में मिलते है । जो हमें मधु कांकरिया के " ढलती साँझ का सूरज " इस उपन्यास में उभरकर सामने आया है । जो पाठक को सोचने के लिए विवश करता है।

मधु कांकरिया एक ख्यातनाम और समकालीन साहित्य का उमदा व्यक्तिमत्त्व की लेखिका है । लेखिका अपने साहित्यिक क्षेत्र में लेखन करने से पहले जनजीवन के गर्भ में उठनेवाले बवाल को स्वयं अनुभव लेकर लेखन के माध्यम से सशक्त साहित्य विधा का जन्म कराती है। मनुष्य के जीवन में अनुमान गलत हो सकते है लेकिन अनुभव कभी गलत नहीं हो सकता। जो अनुभव मिलता है वह उसका गुरू बन जाता है। लेखिका का साहित्य अनुभव का भण्डार है जो हर क्षेत्र में नित नयी समस्या का सामना करने के लिए खड़ी है। आपको बचपन से साहित्य पढने की रूची है। साहित्य और पर्यटन का जीवन में बहुत बडा महत्त्व है। जो आपके साहित्य की गरिमा को बढानेवाला है। जिन्होंने अपने साहित्य लेखन का विषय अनछूए विषयों को मौलिकता प्रदान करते है। जिनके रचनाओं में " खुले गगन के लाल सितारे , सलाम आखिरी , पत्ताखोर , सेज पर संस्कृत , सूखते चिनार , हम यहाँ थे और ढलती साँझ का सूरज (उपन्यास) , बीतते हुए , और अन्त में ईशु , चिड़िया ऐसे मरती है, पाँच बेहतरीन कहानियाँ , भरी दोपहर के अँधेरे , दस प्रतिनिधि कहानियाँ , युद्ध और बुध्द , स्त्री मन की कहानियाँ , जलकुम्भी , नंदीग्राम के चूहे (कहानी संग्रह) , अपनी धरती अपने लोग (सामाजिक विमर्श) , बादलों में बारुद (यात्रा - वृत्तांत) " [1] जैसे अनमोल साहित्य कृतियों को प्रकाशित करते रहे है। जिसके लिए उन्हें अनेक साहित्य सम्मान से पुरस्कृत किया गया है ।साहित्यकार मधु कांकरिया का किसान विमर्श पर ख्यातनाम उपन्यास " ढलती साँझ का सूरज " है। जिसमें आत्महत्या करनेवाले तीन लाख किसानों की दर्दभरी कहानी मौजूद है । ख़ासकर मराठवाडा के विभिन्न जिलों में किसान परिवार को आर्थिक विपन्नता के कारण अनेक समस्याओं का सामना करना पडा है। उन समस्याओं को कोई समाधान न मिलने से अंतिमतः किसान आत्महत्या का मार्ग अनुकरण करने लगा है।

लेखिका अपने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से किसान वर्ग की मानसिक उथल - पुथल , सरकार की गलत नीतियाँ, अनाज़ को योग्य कीमत न मिलना, आँचलिक परिक्षेत्र की कुप्रथा, परंपरा, रीतियाँ आदि सामाजिक संवेदना के माध्यम से सामाजिक सरोकार का निर्माण करना चाहती है।

इस उपन्यास का नायक अविनाश अपनी माँ को स्वदेश में छोड़कर आँखों में हजारों सपने लेकर विदेश की भूमि की ओर आकृष्ठ हो जाता है। माँ अपने बेटे अविनाश को अनेक बार बुलाने पर भी काम की व्यस्तता का कारण बताकर आने को टालता रहा है। स्वित्झर्लंड की लुभावनेवाले सभी पलों के साथ खुलकर निरंकुश होकर जिने का आनंद अविनाश लेने का भरकस प्रयास करता रहा है। वहाँ उसके बेचैनी को दूर के लिए उसकी सहकर्मी नैंसी के साथ परिचय हुआ । उसके बाद दोनों रिलेशनशिप में रहकर एक दूसरे के पार्टनर बन जाते है। वह अपनी प्रेमिका नैंसी को सहचारिणी बनाना चाहता था । वहाँ स्विसी लोग व्यवहार के आधार पर सबसे ज्यादा सोंचने लगते है । जो अविनाश व्यवहार की अपेक्षा हर जगह भावनाशील होकर परिस्थिति का सामना करता है। आखिरकर माँ को मिलने के लिए वह लालायित हो जाता है। एक अधेड अवस्था में जिनेवाला युवक अपने माँ के साथ कोई अनहोनी न हो ! इसलिए वह बच्चों की तरह बेचैन और बेताब बन जाता है। माँ के स्वभाव को नायक याद करते हुए कहता है कि , " इतनी कठोर तो मेरी अम्मा ही हो सकती थी ! है न , मेरी स्टैचू ऑफ़ लिबर्टी ! लेकिन तुम कठोर सिर्फ़ मेरे लिए थीं। सारी दुनिया के लिए तुम्हारा दिल दरिया था। " [2]

भारतीय मित्र अभिषेक के माँ के साथ जो हादसा हुआ है वही हादसा उसके जीवन में न आये। इसके लिए वह हर जगह जाकर माँ को मिलने की गुहार लगाकर यात्रा करता है । आखिर में माँ की अस्थिकलश को देखकर मन की सारी वेदनायें उमड़कर आती है। मुंबई में उनकी पड़ोसी आशा आंटी जो मावशी के नाम से अविनाश पुकारता है । विदेश से जब अपने घर मुंबई में आया तब उसके मन में अनेक अपराधबोध की भावना भरी थी। एक ओर विगत बीस वर्षों में अनेक परिवर्तन की लहर और दूसरी ओर माँ को मिलने के लिए बेटे का यत्न यहाँ पर गहरी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत हुई है । माँ के मृत्यू के पश्चात माँ का बार बार स्वदेश बुलाने का उद्देश्य आशा आंटी , मामा , आधारवड संस्था के बालासाहब वाडेकर , गोविन्दगिरी , शोभा आदि लोगों से मिलने के उपरांत समझने लगता है । अंतिमतः वह अपने ही देश में रहकर माँ जिस तरह अकेली रहकर भी सामाजिक योगदान से एक परिवार बनायी थी। उसी परिवार के साथ रहकर अविनाश माँ का अधूरा काम पूरा करने की बात ठान लेता है। बालासाहब किसानों की स्थिति का वर्णन ऐसा करते है कि , " भारत का किसान एक ऊबड़ - खाबड़ खुरदुरा पत्थर बनकर रह गया है जिसकी जिन्दगी में न राग है न रंग , न गीत न संगीत , न दीवाली , न न्यू ईयर। है तो सिर्फ़ तीन चीज़ - क़र्ज़ , क़र्ज़ और क़र्ज़। देखा आपने आज , जिन्दगी कपास पैदा करने में बीत जाती है इनकी , लेकिन इन किसान की पत्नियों की देह पर कपास से बनी सूती साडियाँ नहीं थी , थीं सस्ती और टिकाऊ पोलिएस्टर की साडियाँ। वो भी कहीं - कहीं क़िस्तों में खरीदी हुई। " [3] विदेश में पत्नी नैंसी और पुत्री स्नेहा के बार बार याद आने पर भी समाज सुधार का एक

जुनुन नायक के मन में छा जाता है। वह अपने मन की बात नैंसी को खत भेजकर हर समय बताता है। माँ की मानसपुत्री शोभा की अवस्था से पूरी तरह से हिल जाता है। अवि के मामा सुरेंद्र गुहे की आर्थिक स्थिती , मामी की मृत्यू , मामा का लडका चिकू की मृत्यू , संघर्ष की यशोगाथा यहाँ प्रकट हुई है। ठेकेदार का धोखा और बेरोजगार की समस्या का शिकार होनेवाले चिकू , रवि जैसे युवक की समस्या को चित्रित किया गया है। मामा के गाँव के किसानों को लेकर खेती के लिए सड़क निर्माण कार्य , पहाडी क्षेत्र में तालाब का निर्माण कार्य भी युवकों को प्रेरणादायी रचना है। हिम्मत हारने से लोग आत्महत्या करते है। लेकिन हिम्मत से सामना करने की ताकत किसानों को इस उपन्यास से मिल जाती है। देश - विदेश में घटीत घटनाओं को आधार बनाकर आम आदमी के जिन्दगी की समस्या किस प्रकार की है ? उन लोगों के पास आर्थिक समस्या छोडकर सबकुछ है। अर्थ के बिना जीवन को अर्थ नहीं है। ऐसे आर्थिक परिस्थिति में कोई सहारा देनेवाला चाहीए। जिससे होनेवाली आत्महत्या पर हम रोक लगा सकते है। किसानों के पास की प्रामाणिकता , कठोर मेहनत करने की क्षमता रहकर भी वह मन से हारकर गलत कदम उठाता है। स्विस में सामाजिक समता प्रस्थापित करने की पध्दति और भारतीय संस्कृति का अलग महत्त्व मधु जी अपने रचना में बखुबी रचयिता का धर्म निभाया है। दो संस्कृति का संघर्ष और भिन्नता को दर्शाते हुए विज्ञान के प्रगति में किसान का महत्त्व प्रतिपादित करनेवाला यह उपन्यास है। मामा के लाख प्रयास करने के बाद भी अविनाश विदेश लौटना नहीं चाहता। मातृभूमी का लगाव मनुष्य को अपने जड़ से उखड़ने नहीं देता। उसे गहराई के साथ और मजबूत बनाती है। वर्तमान किसान शासन और व्यवस्था से न्याय की गुहार लगाता है। मात्र वहाँ उसे आशा के बजाय निराशा झेलनी पडती है। जिससे हारे मन की हार और जिते मन की जित होती है। ऐसे बिकट परिस्थिति में कई आधारवड जैसे सामाजिक संस्था का एकमात्र सहारा मिलता है। देश , राज्य में रहनेवाले हर नागरिक के मन में आशा , आकांक्षा , कर्तव्य , विश्वास , ईच्छा जागृत करना शासन का कार्य होकर भी वे लोग कृतघ्न बन रहे है। इसीलिए " ढलती साँझ का सूरज " जैसे उपन्यासों का लेखन प्रासंगिक लगता है। भारतीय संविधान का उद्देश्य सफल बनाने के लिए राष्ट्रप्रेम , स्वातंत्र्य , समता , बंधुता और न्याय के मूल्यों की स्थापना करना आवश्यक है।

प्रस्तुत उपन्यास की व्यथा किसान की आर्थिक समस्या एवं कर्जा अधिक होने से समय पर रक्कम न देने की पीड़ा , दुख , दर्द , लाचारी और उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँच से वह आत्महत्या जैस मार्ग की ओर जाने लगा है। किसान सबकुछ सहन कर सकता है पर अपमान सहन करना बहुत कठीन होता है। अंतिमतः अपने परिवार को सुख से दिन दिखाने के फिराक में स्वयं के जीवन को तिलांजली देने लगता है। जो गले में रस्सी बाँधकर , किटकनाशक की दवायी खाकर मृत्यू का वरन करने लगता है। फसल को सही दाम न मिलने से शासन के नाम जानवरों को पूरे फ़सल में छोड़ देता है। लेखिका का कहना है कि , जिसकी लाठी उसकी भैंस जैसी अवस्था किसान की बन गई है। अविनाश और उनकी माँ के मन में मातृभूमी में तड़पनेवाले किसान के प्रति अपनत्व का भाव रखनेवाले पात्र का यह कथन है कि , " मामू इतने निराश न हों , कोई समस्या ऐसी नहीं जिसका जवाब न हो। इतने वर्षो के अनुभव ने इतना तो मुझे समझा ही दिया है कि बिना लड़े - जूझे कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। आप देखिए मै यहाँ की ग़रीबी और बेकारी से घबडा कर विदेश भागा लेकिन क्या हुआ , अम्मा को गँवा बैठा तो सौदा कितना महँगा साबित हुआ। आज सोचता हूँ कि काश मैने यहीं रहकर जीवन से मुठभेड़ की होती तो शायद ज्यादा सुखी और संतुष्ट रहता।"[4] इस संकट का सामना करने के लिए संस्था की ओर से गाय भैंस, बकरियाँ जैसे जानवरों को दिया जाता है। अविनाश पढा -लिखा दुनिया की सैर करनेवाला युवक है। उसे यहाँ के किसान की अवस्था जानवरों से बदतर होने से वह चिंतित हो मजाता है। भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति की तुलना इस उपन्यास में कूटकूटकर भरा पडा है। माँ अपने बेटे को अनेक जगह पर उसे पाने के लिए अविनाश की यात्रा कराती है। जिससे सारे भारत देश की संस्कृति, सभ्यता, समाज का दर्शन हो सकें।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्रों में मानसी पांढरे (माँ) , अविनाश , सुरेंद्र गुहे (मामू) , आशा आँटी , नैंसी , स्नेहा , गोविन्दगिरी , शोभा , दिलीप रुद्रराव , बालाजी , फुलवाताई , बबनगिरी , चिकू , रवि , ठेकेदार आदि सारे पात्र अपने - अपने वर्ग , समूह , संस्था , संस्कृति का प्रतिनिधित्व करनेवाले है। वर्तमान समय की बदलनेवाली जीवनशैली और उसमें संघर्ष करने की ईच्छा को दर्शानेवाला उपन्यास है। जब अविनाश अपने जेब से कुछ रुपये एक किसान को किसी कारण दिया था। बहुत समय के बाद वह किसान प्रामाणिकता के साथ रुपये वापस करता है। इस प्रसंग से किसान स्वयं भूखा मर सकता है लेकिन दूसरों को धोखा देना उसके फितरत में नहीं है। जो प्रस्तुत संदर्भ में मिलता है , " कर्ज देणारयाला शेतकरी कधीच विसरत नाही (किसान चाहे खुद को भूल जाए पर क़र्ज़ देनेवाले को कभी नहीं भूलता है)। "[5]

निष्कर्ष :-कुल मिलाकर लेखिका इस उपन्यास में मराठवाडा के जालना जिले के पारतुल , कामथडी और उसके ईर्दगिर्द कई गावों का उल्लेख इसमें पाया जाता है। भगवान बुद्ध , स्वामी विवेकानंद और सावित्रीबाई फुले जैसे विचारकों के चिंतनधारा का काफी प्रभाव मानसी पांढरे पर हुआ है। जो माँ बेटे के एक छोटेसे संवाद में दर्शाया गया है। माँ अपने बेटे का नाम बुध्द रखना चाहती थी पर दादाजी के जिद के कारण अविनाश नाम रखा गया है। इस उपन्यास की भाषा जनसामान्य में काफी प्रचलित है। साधारण सी बोली भाषा के शब्द , हिंदी , अंग्रेजी और मराठी भाषा के सयुंक्त वाक्य , सहज , सरल , ओजस्वी लगते है। लेखिका अपने रचना में सजीवता लाने के लिए स्थानीय शब्द और भाषा का प्रयोग करने से उपन्यास काफी रोचक बना है। दख्खिनी , उर्दू , अरबी भाषा के भी कछ शब्द हमें मिलते है। किसान जीवन की दास्ता को बहुत ही साधारणीकरण के साथ प्रस्तुत किया गया है। जैसे प्रेमचंद की गोदान नामक रचना एक उच्च कोटी की रचना है वैसे ही वर्तमान समय में किसान समस्या को लेकर मौत के कुँए का अनुभव " ढलती साँझ का सूरज "उपन्यास के माध्यम से मिल जाता है। दो खण्डो का यह उपन्यास किसान विमर्श की महागाथा है। किसान के जीवनचक्र का समग्र अवलोकन यहाँ पर कराया गया है। किसान को समझना बहुत मुश्किल काम है जो अविनाश सोचता है कि , " कितना सही कहा था मामू ने - किसानी जीवन के लिए कुछ करना है तो किसान को किसान की आँख से देखना सीखना होगा। बिना नब्ज़ पकड़े कैसे जानोगे कि कितना बुखार है ? पर कितना मुश्किल है किसी ग़ैरकिसान के लिए किसानी जीवन के प्रिज्म को देखना - समझना , उसकी ध्वनियों को सुनना , उनके सुख - दुख के विविध रंगों को देख पाना। किसान , चूल्हा और भूख का रिश्ता यहाँ आने से पहले क्या दुनिया का कोई भी मार्क्स समझा सकता था उसे ? " [6] वास्तव में किसानी अनुभव के बिना समझना असम्भव है। इस दुष्टचक्र के चंगुल से जल्द ही किसान छुटकर आसमान की बुलंदियों को हासील कर कर आनेवाला युग " कृषी संस्कृति, सभ्यता और समाज " का हो यही मंगलमय कामना हम करते है।

****

संदर्भ ग्रंथ :-

1) ढलती साँझ का सूरज - मधु कांकरिया , राजकमल प्रकाशन , दरियागंज , नयी दिल्ली पृ.क्र.1
2) वहीं पृ.क्र. 18
3) वहीं पृ.क्र.71
4) वहीं पृ.क्र.145
5) वहीं पृ.क्र.178
6) वहीं पृ.क्र.179

Educational Radio programme: An Effective Method of teaching and learning

Dr. Meenu Dev
Assistant Professor
CTE, Nuh, MANUU

ABSTRACT-Main objective of the paper is to find out the effectiveness of educational radio program at primary level in Anuppur district of Madhya Pradesh through students and teachers attitudes on educational radio program towards gender, locality, ERP schools and non-ERP schools. This paper is focused on two Radio Educational programs namely a) 'English is fun' which is running to improve English as a second language. b) 'Jhilmil' which is related to environmental studies and mathematics. In the present time English, environmental studies and mathematics is basic subject to teach at the primary level schools and or the development of these basic subjects Central and State Government have implemented many programs / schemes The major findings of the study are that the radio-based learning in the classroom has been proven quality learning in these remotely located tribal hamlets and the students have utilised the radio program though group discussion, student's teacher interaction, conducive classroom situation, improved listening skill. So, it is vital to sustain Radio programs in the schools and polices should be made to be implemented stringently on the basis of the findings of the present study, discussion, suggestions, implementations and further research should done to make the radio programs more effective for the quality learning.

Introduction:-Education is an essential means and well-planned process through which the child systematically learns from his teachers in school. The teacher becomes role model for the students whose personality can significantly affect the child's behaviour. Teacher plays a vital role in educating a child by imparting knowledge. Therefore, it is the teacher's job to encourage and imbue the students on the learning path. The development of education never stops. As the child grows up, he keeps learning something because his nature is full of curiosity. In its true sense education refers to society's continuous teaching and learning process.

The present study is related to spread out the primary education system in India through different mediums and ways and how it is helpful to the progressive development process of a child. As far as the national perspective is concerned the education system is the foundation of national self–reliance. The primary education system plays an essential role in every person's life as it helps to build the present, which will consequently lead to the future of any person. Education makes us cultured and develops human resources at every level to fulfil national integration, scientific and economic needs on the basis of psychological principles, it is observed that at the age of 5-6 years child develops the ability to speak, concentrate, and understand relationships and all other neurological development take place in a child. Child becomes capable of getting formal and non-formal education. (Gupta & Radio is a part of non-formal and all types of education used in the teaching and learning process as an aiding resource. The role of the teacher is significant when using the radio in the classroom as a learning instrument. Effective teaching can only occur in the guidance and direction of a teacher. Radio is used today to impart knowledge from the primary to the higher secondary level. One such educational program is "English is Fun." another one is "Jhilmil" an Educational Radio Program that mainly focuses on teaching Environmental studies and Mathematics in Madhya Pradesh and Chhattisgarh. Similar educational radio programs are also being broadcasted throughout India to educate the people. In this way, radio has maintained its effectiveness in all aspects spreading education for all.

EDUCATIONAL RADIO PROGRAMME IN MADHYA PRADESH -This Educational Radio Program is being broadcasted in seven states of India including Madhya Pradesh; it was started in Madhya Pradesh from Bhopal radio station in 2005-2006. It promotes two educational radio programs in Madhya Pradesh, the first is 'English Is Fun' and the second is Jhilmil. 'English is Fun', basically designed for Level-I and Level-II students, where Level-I covers classes from Class-I to Class-III and Level-II covers classes IV, V are included. The primary objective of this programme is to improve the English language of primary level students. Whereas, the objective of the 'Jhilmil' Educational Radio Program is to make students aware of the concepts of environmental studies and mathematics. (India education diary, 2020) Both the IRI-Educational Radio programs were jointly started by the Government of Madhya Pradesh (Education Department) and Educational Development Centre (EDC)

Need of the Study-The Study focused on the informal education system because this time education requirements are higher to cater the needs of the masses .The purpose of this study is to find out effectiveness of educational radio programs at primary level and

broadcasting services to promote the teaching and learning of English language, Environmental Studies and mathematics among the students.

Objectives of the study

1.To analysis responses of the primary school teachers' on ERP based on availability of radio, Teacher Handbook, radio network, teacher engagement based on their Gender, Locality and teacher position, impact of ERP on children, teacher experience, students' interest on ERP, ERP as teaching aids, teacher problems on ERP.

2.To analyse responses of the primary school students on availability of guidance to the school students on ERP, student interest on ERP, interest on characters of radio program.

3.To study the attitude of primary school teachers toward Educational Radio Program.

4.To study the attitude of primary school students towards Educational Radio Program.

5.To study the relationship between the student's attitude and Achievement score in English

Method of the Study-In this present study according to the purpose of the study, a survey research method was used by the investigator. The survey method was very helpful and easy for the researcher for the collection of the data in a short period when compared to other research designs. It entails a well-defined problem and specific goals or objectives. It requires expert and imaginative planning, careful analysis and interpretation of the data gathered.

Area of the Study:-The area of the study consists of four blocks of district of Anuppur district of Madhya Pradesh namely Anuppur, Kotma, Jaithari and Pusphrajgarh. The maps spotting these areas of the study are given below.

Population of the Study:-The present study's target population consisted of primary school teachers and students studying in classes 3rd to 5th in the Anuppur district of Madhya Pradesh state.

SAMPLE -In the present study, the researcher adopted a random sampling technique for the selection of the samples. The study area of this study is the government primary schools of the Anuppur block in Anuppur district Jaithari, Kotma, and Pushprajgarh) have been included. For the selection of schools' investigator randomly visits 35 Govt. Primary Schools of Anuppur district of Madhya Pradesh. After that 10 Primary Schools were selected. A total sample size of 140 has been selected for this study, of which 120 students and 20 Headmasters/teachers were selected from 10 government primary schools. In this study random sampling techniques was adopted for selecting the sample. Random sampling is a type of sampling method used in research studies in which each data point has an equal chance of being selected.

Tool:-achievement tests; In research, scores of achievement tests are often used in evaluating scores; when using tests for assessment purposes, researchers must remember that specific elements should not generalized beyond. (Best, John W., James V. Kahn, 2006) The study collected Primary data for the research work through Teachers' Attitude Questionnaire (TAQ), Students' Attitude Schedule (SAS) and Students' Achievement Tests (SAT) for English Language, Environmental Studies and Mathematics of primary level students. These tools were constructed by the researcher with the help of a supervisor and expert.

Data Analysis and Interpretation:-The researcher considers it necessary to make some general observations regarding the data collected before proceeding to interpret the results. No conclusion can be drawn from the raw data collected by the research tools, for which the researcher interprets the results obtained by using different statistical methods from the data collected in association with the different tools. the present chapter deals with the analysis of data along with the interpretation of the results. It has been already described that the aim of the study is to determine the effectiveness of educational radio program. In the present study Educational Radio programs (English is Fun and Jhilmil) has been taken as the independent variable. And attitude and achievement are taken as the dependent variables. the study employed descriptive statistics for the representation of the effectiveness of Educational Radio Program on primary level students as well as teachers' attitude and comparing the variable by using Mean, SD and t-test. The oneway ANOVA computed to analyse the class 3 to 5th students' achievement on English language towards English is fun Educational Radio Program of the independent variable on the dependent variable. Therefore, statistical procedures known as classification and tabulation have been used to present disorganized, complex and unintelligible data in some significant form. The primary purpose of statistical inference is to generalize the findings obtained by researchers from a sample of the same larger population, which is a part of the sample.

Findings of the Study:

1.There is no significant difference between the school teacher's attitude based on gender accessibility status of ERP, Teacher's motivation, technical issue on ERP, and Effectiveness of ERP.

But there is significant difference between the school teacher attitude based on gender towards Mobile Use on ERP. The male teachers (1.64) are greatly using the mobile phone than the female teachers (1.54). The reason is that the male teacher psychologically favors the use of mobile phone frequently and they may have

active interaction toward mobile phone usage.

2.There is no significant difference between the school teacher attitude based on Locality towards accessibility status of ERP, Teacher- Motivation, Technical Issue on ERP, Mobile Use on ERP and Effectiveness of ERP.

3.There is no significant difference between the school teacher attitude based on ERP and Non-ERP schools towards Technical Issue on ERP and Effectiveness of ERP. But There is significant difference between the school teacher attitude based on ERP and Non-ERP schools towards accessibility status of ERP, Teacher-Motivation, Mobile Use on ERP.

4. There is no significant difference between the school teacher attitude based on position (Headmaster and Teachers) towards, accessibility status of ERP, Technical Issue on ERP and Effectiveness of ERP.

But there is significant difference between the school teacher attitude based on position (Headmaster and Teachers) towards, Teacher- Motivation and Mobile Use on ERP.

5. There is no significant difference between the students based on gender towards accessibility status of ERP, Teacher- Students Cooperation, and Students Interest on ERP.

But there is significant difference between the students based on gender towards Students Motivation on ERP and Students Attitude on ERP. The female students (6.87) have higher motivation than the male students (6.47). it is due to their interest and self-ability. And the female students (42.32) have higher attitude on ERP than male the male students (41.29)

Recommendations of the Study:-1. It is necessary to resolve issues concerning the transmission of educational radio programmes. Because the main issue of educational radio programmes is a lack of radio sound or a radio network.

2. Schools where educational radio programs are not running continuously due to radio network issues. In addition to providing a small sound system in those schools, the program's recording data should be made available. in the present study, 46% of teachers recommended a small sound system and tools for 'Recording data' in the school.

3.All teachers should be provided regular training related to educational radio programs to do the activities during the program effectively. There should be a provision for regular teacher training on a continuous basis to provide them with new ideas and material, clear their doubts and exchange experiences, all of which are essential if the Educational Radio Program is to play a significant role in improving quality.

4.Today education is completely based on child cantered system according to which every child has the right to study according to his interest, age, physical and mental ability. That is, during the broadcast of the educational radio program, the program is narrated to the students of class 1-2 and class 3-5 by sitting together. Which is not according to the interest, nature and intelligence (IQ) of the students. Therefore, educational radio programs should be broadcast class wise keeping in view the individual differences of their students. According to the present study, the government should make some changes in implementing the educational radio program.

5.The broadcast time of the Educational Radio Program is between 12:05 pm to 1:35 pm. This is lunchtime for most primary level school children. so, most students are more interested in eating food than listening to educational radio programs. Thus, there is a need to reschedule the Educational Radio Program schedule. So that most of the children can participate in the Educational Radio Program.

Educational Implications of the Study:

Educational implications are based on research findings which provide a way to make teaching learning process effective through constructivist approach. Based on the findings of the study the following educational implications can be determined.

1.The Educational Radio Program aims at improving the quality of teaching-learning process among primary school students. Learning is easy for primary school students through this program. Children take more interest in learning due to which positive improvement has been seen in their achievement.

2.Educational Radio Program is educationally more beneficial for people living in rural areas, as students get learning through the play way method.

3.Educational radio programs create an active environment for learning, allowing the student as well as the teacher to learn.

4.Educational radio programs provide an opportunity for students to learn independently. So, it is useful for the students. Through which it provides an opportunity to the children to study at home also.

Teachers encourage students to explain and reflect on their answers during

Educational radio programs.

Conclusion of the Study:-The main objective of the study is to find out the effectiveness of Educational Radio Program at primary level in Anuppur district of Madhya Pradesh through students and teachers attitudes on Educational Radio Program tin terms of gender, locality and ERP schools and non-ERP schools. The

analysis are made on students' achievement score on English language, environment studies and mathematics. This study is focused on two educational radio programs namely a) 'English is fun' which is focused to improving English as a second language. b) 'Jhilmil' which is related to Environmental studies and Mathematics. In the present environmental studies and mathematics is basic subject to each and every student in the primary level schools. For which the development of education through the Central and State Government implement many programs / schemes. Educational Radio Program is one of the important initiatives for the development of primary education. In this study researcher has adopted survey method. The major finding of the study the educational radio-based learning in the classroom has proven academic quality in these remotely located tribal hamlets and these students have utilised the radio program though group discussion, student's teacher interaction, conducive classroom situation, improved listening skill. So, it is vital to sustain these programs in these schools for which the polices should be made and to be implemented stringently. Based on the findings of the present study, discussion, suggestions, implementations and conclusion for further research were made. Educational Radio Program aims at quality improvement in teaching learning process of primary schools. Radio programs empower our teachers to use popular media in academic pursuits and enable them to teach using innovative teaching methods. Presently the primary school use a functional method of educational radio programs. Teachers should be encouraged to follow and use innovation in their teaching-learning process.

****

Bibliography:

1.Aaberg, M. (2020). Radio in Music Education: The Indiana School of the Sky Music Episodes, 1947-1948. Journal of Historical Research in Music Education, 1-9. doi:10.1177/1536600620973458
2.Agrawal, J.C. (2013). Educational Technology and Management. Agra: Vinod Pustak Mandir.
3.Ajaegbu, O., Akintayo, B., & Akinjiyan, M. (2015). Radio Listening Habits among University Students and Their Attitude towards Programmes (A Study of
4.Redeemers University Students). Research on Humanities and Social Sciences, 5(12), 149-158. Retrieved from http://www.iiste.org/
5.Alan, G. S. (1993). Listening For Listeners: Educational Radio and Audience Research.
6.Journalish History, 19(1), 11-18.
7.doi:https://doi.org/10.1080/00947679.1993.12062351
8.Allan, D. I. (1948). The British Way of Radio. Hollywood Quarterly, 3 (4), 362-367.
9.Retrieved from www.jstor.org/stable/1209307
10.Anderson, J. E. (1939). The Radio and Child Development. The Phi Delta Kappan,, 316-318. Retrieved from www.jstor.org/stable/20258896
11.Anderson, J., & Lightfoot, A. (2018). Translingual practices in English classroom

हिंदी की राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा : एक सिंहावलोकन

डॉ. चंद्रकांत सिंह
सहायक प्राध्यापक (हिंदी विभाग)
हिमाचलप्रदेशकेंद्रीय विश्वविद्यालय,
धौलाधार परिसर-01,धर्मशाला,जिला-कांगड़ा,हि.प्र.-176215
मो. न.- 09805792455

हिंदी की राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा ब्रिटिश दासता और औपनिवेशिक मानसिकता की प्रतिक्रिया कही जा सकती है | इस काव्य-धारा ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों को न केवल दर्शाने का कार्य किया अपितु समूचे साम्राज्यवाद को सार्थक चुनौती भी प्रदान किया | अंग्रेजी दासता ने समूचे भारतवर्ष को भीतर से खोखला कर दिया था | भारतीय चिंतन परंपरा, भारतीय सांस्कृतिक मूल्य ध्वस्त हो चुके थे | शिक्षा, रोजगार एवं जीवन जीने की पद्धति आदि सब नष्टप्राय हो गये थे | ऐसे में एकाकीपन और असुरक्षा बोध की भावना ने भारतीयों को भीतर तक प्रभावित किया था | भारतीय नवजागरण ब्रिटिश अंधकार से निकलने का एक सार्थक प्रयास है और इसी प्रयास नेहिंदी की राष्ट्रीय- सांस्कृतिक काव्यधारा को जन्म दिया | राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशव चंद्र सेन, महादेव गोविंद रानाडे जैसे चिंतकों ने सामाजिक जड़ता को दर कर अखंड भारत की ओर सार्थक कदम बढ़ाया था | सामाजिक-रौजनीतिक क्षेत्र में शिथिलता और विभ्रम की जो स्थिति दिखाई देती है, भारतीय कविता उसे हटाती है और समूचे राष्ट्र को एकजुट करती है | हिंदी की राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा को समय और समाज की परिवर्तनकारी शक्ति के तौर पर देखना होगा | इस काव्य-धारा ने भारत के प्रति अंग्रेजों की विकृत मानसिकता को चुनौती देने के साथ भारत का गौरवशाली इतिहास भी प्रस्तुत किया | भारतीय ज्ञान-धारा एवं जीवन पद्धति के सन्दर्भ में अंग्रेज नकारात्मक प्रचार कर रहे थे, भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा ने इस नकारात्मक भाव को जनता के समक्ष रखा और भारत की सांस्कृतिक चेतना का गहन अनुशीलन भी किया जिससे कि भारत की वास्तविक स्थिति उजागर हो सके | अंग्रेजों द्वारा प्रचारित मानसिकता ने भारत को विश्व के समक्ष एक कमजोर राष्ट्र के तौर पर रखने का कार्य किया | भारतीयों ने अंग्रेजों के वास्तविक रूप को जनता के समक्ष लाने का कार्य किया और भारत के स्वर्णिम अतीत को जनजीवन के सामने रखा | अंग्रेजी दमन एवं अहंकार के प्रति विद्रोह की भावना पूरे भारत भर में देखी जा सकती है | विविध भाषाओं एवं बोलियों में पूरा भारत अंग्रेजी आधिपत्य का विरोध कर रहा था | हिंदी कविता भी इससे अछूती न थी, इस काव्य-धारा ने भी क्रांति का रुख अख्तियार करते हुए औपनिवेशिक तंत्र को तार-तार कर दिया था | बात यदि भारतेंदु हरिश्चन्द्र की करें तो उनकी कविताओं में सामाजिक विषमताओं पर प्रहार एवं अंग्रेजों की साम्राज्यवादी स्थिति को देखकर चिंता दिखाई पड़ती है | स्वयं को पराजित मानकर निराश बैठने वाले भारतीयों को उन्होंने जगाने का कार्य किया | वे जागरण का गीत गाते हुए कहते हैं –

जागो जागो रे भाई |
सोअत निसि बैस गँवाई | जागो जागो रे भाई ||
निसि की कौन कहै दिन बीत्यौ काल राति चलि आई |
देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस आई ||
निश उद्धार पंथनहिंसूझतसीस धुनतपछिताई |
अबहूँ चेति पकरि राखौ किन जो कछु बचीबड़ाई |
फिरे पछिताये कछु नहिं ह्वै है रहिजैहौ मुँह बाई ||

हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा हिंदी पट्टी का जातीय स्वाभिमान है जिसमें पूरे हिंदी क्षेत्र की धड़कन सुनाई पड़ती है | प्रो. कृष्ण दत्त पालीवाल जी

कहते हैं कि -- "आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता की जातीय और क्रांतिधर्मी मुद्रा का आविर्भाव ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टकराव और संघर्ष की परिस्थिति में होता है | राष्ट्र का उद्दीप्त स्वाभिमान ही मानो इस कविता में उमड़कर प्रवाहित हो उठता है |"

निस्संदेह हिंदी की राष्ट्रीय काव्य-धारा में पूरे भारत का आत्म गौरव परिलक्षित होता है | हिंदी की यह कविता कई मायनों में विशेष है | भारतवर्ष की वास्तविक पहचान इस कविता में दिखती है | प्राकृतिक परिवेश के साथ ज्ञान-चेतना का पूर्ण प्रकटीकरण इस कविता में है | गहन निद्रा में सोने वाले भारतीयों को जगाने के साथ यह कविता शक्ति-काव्य बनकर शक्ति का अजस्र स्रोत भी पैदा करती है जिससे कि वीरों का सही पोषण हो सके |कवि गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' अपनी कविताओं में भारत के इतिहास एवं जीवन-दर्शन को याद करते हैं | सत्य-बल, राष्ट्र के प्रति एकनिष्ठ प्रेम एवं आत्म-बल की दृढ़ता जो प्राचीन भारत में दिखाई पड़ती थी | उसे याद करते हुए, अतीत के सुंदर दृष्टांतों को सँजोते हुए कवि गया प्रसाद शुक्ल सनेही जी वर्त्तमान को नव-वाणी प्रदान करते हैं | वे अपनी कविता 'गुज़रा हुआ ज़माना' में भाव विह्वल स्वर में कहते हैं –

वह सत्य-बल हमारा धीरज अटल हमारा,
वह प्रेम जल हमारा, वह हृत्कमल हमारा |
वह स्वाभिमान अपना, वह प्रण अचल हमारा,
सर्वस्व हाय अब तो है चल विचल हमारा |
आता है याद मुझको गुजरा हुआ ज़माना ||

वह आत्म-बल कहाँ है, सद्ज्ञान अब कहाँ है,
वह धारणा कहाँ है, वह ध्यान अब कहाँ है |
अपनी स्वतंत्रता का अभिमान अब कहाँहै,
वह मान अब कहाँ है सम्मान अब कहाँ है |
आता है याद मुझको गुजरा हुआ ज़माना ||

कवि मैथिलीशरण गुप्त जी 'भारत-भारती' में भारत के मनोहर रूप का वर्णन करते हुए उसे पुण्य भूमि के रूप में आदर देते हैं | ज्ञान-विभा के उत्कर्ष की भूमि,संयम एवं त्याग की भूमि के रूप में उन्होंने भारत का स्मरण किया है | वे कहते हैं -

भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ |
संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है ||

निस्संदेह भारत एक ऐसी भूमि है जहाँ जन्म लेने के लिए देवता भी लालायित होते हैं | यह वह भूमि है जिसने अपने कर्म, आदर्श एवं जीवन से जगत को दिशा देने का कार्य किया | आचरण, कर्म एवं धर्म की सम्पूर्ण बानगी इस देश में मिलती है किन्तु धीरे-धीरे त्याग एवं तितिक्षा की भावधारा मृतप्राय होने लगी | 'भारत भारती' में कवि ने भारत के प्राचीन ज्ञान-गौरव को याद करने के साथ-साथ वर्तमान में भारतीयों की स्वार्थ भावना,आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति आदि को भी उल्लिखित किया है | अपनी कविता के माध्यम से गुप्त जी सभी भारतीयों को जगाने का काम करते हैं और उनसे देश-हित, समाज-हित अपना सर्वस्व बलिदान करने की अपील भी करते हैं | अंग्रेजों के दंभ एवं प्रदर्शन को देखकर निःशक्त हो चुकी भारतीय आत्मा को नई वाणी देने की बात गुप्त जी करते हैं | उनकी कविता को भारतीय चेतना की मुखर अभिव्यक्ति कहा जा सकता है -

अब भी समय है जागने का देख आँखें खोल के,
सब जग जगाता है तुझे, जग कर स्वयं जय बोलके |
निः शक्त यद्यपि हो चुकी है किंतु तू न मरी अभी,
अब भी पुनर्जीवन-प्रदायक साज हैं सम्मुख सभी ||

तत्कालीन भारतीय परिवेश अनेक आडम्बरों एवं सामाजिक जड़ताओं से युक्त था, गुप्त जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से मोह एवं तमस में फँसे हुए युवकों को मुक्त किया और उन्हें उनके स्वत्व से परिचित कराया। उनकी कविता भारतीयों को उनके भाव-जगत से परिचय कराती है | इस कविता को अभिप्रेरणा, उत्साह एवं नवसृजन की कविता कहा जा सकता है जहाँ कवि ने निद्रा-सम्मोहित भारतीयों को जागरण का स्वर प्रदान किया है | कवि का अथाह विश्वास है कि भारतीय अपने संख्या बल और शक्ति से काल की दिशा भी बदलने में सक्षम हैं | इनके भीतर वह योग्यता और शक्ति है जिसके बल पर ये पुनः भारत को गौरवशाली राष्ट्र बना सकते हैं | इसी अनुपम विश्वास के बल पर कवि कहते हैं -

है ज्ञात क्या तुमको नहीं, तुम लोग तीस करोड़ हो,
यदि ऐक्य हो तो फिर तुम्हारा कौन जग में जोड़ हो ?
उत्साह-जल से सींचकर हित का अखाड़ा गोड़ दो,
गर्दन अमित्र अध: पतन की ताल ठोंक मरोड़ दो ||

हिंदी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा में मैथिलीशरण गुप्त जी का अतुल्य योगदान है | उनकी कविताएँ बहुआयामी हैं जिनमें देश-काल की विविध अर्थ छटाएँ हैं | व्यक्ति, समाज, शिक्षा, राजनीति एवं राष्ट्र के कतिपय प्रश्न उनकी कविताओं में मुखर होकर सजीव हो उठते हैं | उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से अंग्रेजी दासता के बीच भारतीयों की पराधीन मानसिकता को प्रकट करने के साथ उससे मुक्त होने के उपाय भी बताए जिससे कि भारत उत्कर्ष को प्राप्त हो सके | उनकी काव्य-धारा को जागरण एवं समुन्नति की काव्य-धारा कहा जा सकता है जहाँ कवि को भारत की सर्वदिशीय प्रगति अपेक्षित है |

हिंदी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा में सुभद्राकुमारी चौहान जी का नाम भी आदर से लिया जाता है | सुभद्रा जी का जीवन बाल्यकाल से ही देश और समाज को समर्पित था | उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के लिए बाल्यकाल से ही संघर्ष किया | एक कवि के साथ-साथ उनमें एक कुशल नेत्री एवं आन्दोलन कर्मी के गुण भी परिलक्षित होते हैं | स्वतंत्रता आन्दोलन में नारी-शक्ति की भूमिका और उपादेयता की दृष्टि से उनकी कविताएँ महत्वपूर्ण हो जाती हैं | यदि भारतीय नारी के बलिदान, स्वाभिमान एवं अदम्य साहस की झलक देखनी हो तो सुभद्रा जी के निजी जीवन एवं कृतित्व में आसानी से उसे देखा जा सकता है | घर-बाहर नारी की जो बहुआयामी भूमिका है उसे अपने लेखन और जीवन से सुभद्रा जी दर्शाती हैं | 'झाँसी की रानी', 'झाँसी की रानी की समाधि पर', 'विजयादशमी' आदि कविताओं में उन्होंने खुलकर स्वतंत्रता के बहाने नारीत्व को अभिव्यक्ति प्रदान की है | रानी लक्ष्मीबाई की समाधि पर लिखते हुए उसे पराक्रम और वीरता की पुन्यस्थली के तौर पर कवयित्री ने देखा है | वह प्रशंसाबोध में कहती हैं-

इस समाधि में छिपी हुई है
एक राख की ढेरी |
जलकर जिसने स्वतंत्रता की
दिव्य आरती फेरी ||

यह समाधि, यह लघु समाधि है,
झांसी की रानी की |
अंतिम लीलास्थली यही है
लक्ष्मी मर्दानी की ||

जलियांवाला बाग़ के नृशंस हत्याकाण्ड पर सुभद्रा जी ने एक से बढ़कर एक कविताएँ लिखीं और भारतीयों की शोकावस्था के अंग्रेजों के दमनतंत्र को उजागर किया | सुधा चौहान जी ने जलियांवाला हत्याकाण्ड और सुभद्रा जी के रचना-कर्म को याद करते हुए लिखा है कि - "जलियांवाला बाग हत्याकांड हो चुका था | सरकार की सारी कोशिशों के बाद भी धीरे-धीरे उस जातीय अपमान की बात लोगों को मालूम हो रही थी और उनका क्षब्ध आत्म गौरव इस अन्याय के प्रतिकार के लिए सन्नद्ध हो रहा था | लिखने वाले के लिए उसकी लेखनी सबसे बड़ा हथियार है | सुभद्रा ने इस जलियांवाला बाग हत्याकांड पर कुछ बहुत ही मार्मिक कविताएँ लिखीं | एक कविता में

वसंत से निवेदन है कि है ऋतुराज, तुम आओ, परंतु यह स्थान शोक का है, यहाँ बच्चे मरे हैं, बूढ़े मरे हैं, नवयुवतियाँ अपमानित हुई हैं | उनके माथे का सिंदूर, उन बूढ़ों का सहारा, उन दूध-मुँहे बच्चों का पालनहार सिपाहियों की गोलियों से भूंज डाला गया है, इसलिए हे वसंत, तुम धीरे से आना और इन अभागों की याद में कुछ मुरझायी हुई कलियाँ भर यहाँ गिरा देना |"

सुभद्राकुमारी चौहान जी की कविताएँ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के हर एक अधिवेशन और आन्दोलन की साक्षी है | इसका बड़ा कारण एक नेत्री के तौर पर उनका निजी जीवन है | सुभद्रा जी मात्र कवयित्री भर नहीं हैं बल्कि देश जागरण में बढ़चढ़कर हिस्सा लेने वाली एक कुशल नेत्री भी हैं | विवाह के बाद तो उनकी साहित्यिक और सामाजिक प्रतिबद्धता विशेष जान पड़ती है | सुधा चौहान जी उनके पति लक्ष्मण सिंह जी की पत्रकारिता के प्रति निष्ठा और सुभद्रा जी की कांग्रेस के प्रति प्रतिबद्धता को व्यक्त करते हुए लिखा है कि - "लक्ष्मण सिंह 'कर्मवीर' के साहित्य संपादक थे और बाकी समय में कांग्रेस का काम करते थे, सुभद्रा भी उनके साथ-साथ काम करती थीं किंतु लक्ष्मण सिंह को कर्मवीर की संपादकी के कारण अधिकतर जबलपुर में ही रहना पड़ता था |सुभद्रा के लिए यह बंधन नहीं था, वे कांग्रेस के काम से जबलपुर से बाहर भी जाती -आती रहती थीं | जब झंडा सत्याग्रह का केंद्र जबलपुर से हटकर नागपुर पहुँच गया, तो सुभद्रा भी नागपुर के असहयोग आश्रम में रहने लगीं |"सुभद्राकुमारी चौहान जी देश के प्रति पूर्णतः समर्पित थीं यही कारण है कि उनकी कविताओं के केंद्र में राष्ट्रीयता और राष्ट्र प्रेम की भावना है जो विभिन्न दृष्टियों से अहम है | यदि भारतीय स्वतंत्रता के ऐतिहासिक कालक्रम को समझना हो तो इस दृष्टि से सुभद्रा जी की कवितायें अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती हैं | जेल में कैद स्वतंत्रता सेनानियों के उत्साह और अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों की भर्त्सना करती हुई इन कविताओं में स्वतंत्रता की चाह और देशहित सर्वस्व अर्पित करने की भावना मुखर होती है | हर तरह की बाधाओं और व्याधियों से टकराती हुई इन कविताओं में कभी न हार मानने की प्रबल प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है | बात यदि सुभद्रा जी की 'बिदा' कविता की करें तो यह अंग्रेजों के गिरफ्तारी वारंट की कलई खोलती है | इस कविता में जहाँ ब्रिटिश दमन की जीवंत झलक है वहीं भाई-बहन के स्नेहिल प्रेम को दृष्टांत बनाकर देशहित सहर्ष गिरफ्तार होने की आकंठ लालसा है | इस कविता में कवयित्री ने भारतीयों को प्रेरित किया है कि देशहित जेल जाना अपमान का नहीं वरन सम्मान का प्रश्न है | जेल को उन्होंने परमपुनीत तीर्थ कहकर भारतीयों को अभिप्रेरित किया है | वह लिखती हैं –

तिलक,लाजपत, गांधीजी भी
बंदी कितनी बार हुए |
जेल गए जनता ने पूजा,
संकट में अवतार हुए ||
जेल ! हमारे मनमोहन का
प्यारा पावन जन्म स्थान !
तुझको सदा तीर्थ मानेगा
कृष्ण-भक्त यह हिंदुस्तान ||

'विजयादशमी' कविता में सुभद्राकुमारी चौहान जी प्रभु श्रीराम को याद करती हैं | त्याग-तितिक्षा और संघर्ष की गौरव-गाथा के सहारे पराधीन भारत को स्वतंत्र कराने की चाह इस कविता में दिखती है | यह कविता ओज एवं उदात्तता की अपूर्व निधि है जिसमें भारतीयों को चिर-निद्रा से जगाने का बोध है | सुभद्रा जी मिथकीय आदर्शों का निरूपण करती हुई लिखती हैं -

रामचंद्र की विजय-कथा का
भेद बता आदर्श सखी!
पराधीनता से छूटे यह
प्यारा भारतवर्ष सखी!

भारतीय इतिहास साक्षी है कि स्वतंत्रता आंदोलन में जितनी भूमिका पुरुषों की रही उतनी ही स्त्रियों की रही जिन्होंने न केवल पुरुषों को भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रेरित किया वरन स्वयं देशहित संघर्ष किया | 'विजयादशमी' कविता में सुभद्रा जी भारतीय नारी-शक्ति को दर्शाती हैं जो ओज एवं उत्साह की साकार प्रतिछवि हैजिसे किसी बात का भय नहीं | उनका विश्वास है कि भारतीय नारी स्वतंत्रता के लिए तनिक भी पीछे नहीं हटेगी और अपनी प्रचण्ड शक्ति से जीवन को नव-दिशा देगी |वे कहती हैं कि यदि पुरुष पीछे हट गए तब भी भारत की नारी-शक्ति पीछे न होगी | वह पराधीनता की कारा को काटकर नवनिर्मिति हेतु सन्नद्ध है | सुभद्रा जी की कविताओं की विशिष्टता नारी-शक्ति के संधान के सहारे राष्ट्र जागरण में है | वह स्पष्ट कहती हैं-

सबल पुरुष यदि भीरु बने,
तो हमको दे वरदान सखी !
अबलाएं उठ पड़ें देश में,
करें युद्ध घमासान सखी !
पंद्रह कोटि असहयोगिनियाँ
दहला दें ब्रह्मांड सखी !
भारत- लक्ष्मी लौटाने को,
रच दें लंकाकांड सखी !

सुभद्रा जी का मनोजगत स्वाधीन भारत की कल्पना करता है | उनके मानसिक अवबोध में देश-जागृति का स्वप्न है | 'स्वदेश के प्रति' कविता में सुभद्रा जी स्वतंत्रता की चाह रखती हैं | प्रस्तुत कविता को हर्ष, उत्साह एवं उमंग की कविता कहा जा सकता है | जहाँ कवयित्री ने स्वदेश को उन्नति के शिखर पर आसीन होने का स्वप्न देखा है | तभी वह कहती हैं-

आ, स्वतंत्र प्यारे स्वदेश आ,
स्वागत करती हूँ तेरा |
तुझे देखकर आज हो रहा
दूना प्रमुदित मन मेरा ||
आ, उस बालक के समान
जो है गुरुता का अधिकारी |
आ, उस युवक वीर-साजिसको
विपदाएँ ही हैं प्यारी ||
आ, उस सेवक के समान तू
विनय-शील अनुगामी-सा |
अथवा आ तू युद्ध क्षेत्र में
कीर्ति- ध्वजा का स्वामी-सा ||

हिंदी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी की भूमिका भी अग्रगण्य है | उन्होंने कवि, कवित्व-शक्ति और रचना के माध्यम से देश में युग परिवर्तन की बात कही | उनकी कविताओं में देश -राग का स्वर तो दिखता ही है इसके साथ उसे युग परिवर्तक के तौर पर देखा गया है | बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी कवि को जागृत करते हुए कहते हैं -

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये एक हिलोर उधर से आये,
प्राणों के लाले पड़ जायें, त्राहि-त्राहि स्वर नभ में छाये,
नाश और सत्यानाशों का धुआंधार जग में छा जाये
बरसे आग, जलद जल जाये, भस्मसात भूधर हो जायें,
पाप-पुण्य सदसद् भावों की धूल उड़ उठे दायें- बायें;
नभ का वक्षस्थल फट जाये, तारे टूक-टूक हो जायें,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये,

सभ्यता-विमर्श की आड़ में अंग्रेज स्वयं को श्रेष्ठ एवं भारतीयों को हेय

समझ रहे थे | स्वयं को आधुनिक एवं प्रगतिशील कहने वाले ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को नवीन जी ने अपनी कविताओं के सहारे वास्तविक आईना दिखाना चाहा है | उनकी कविताओं में भारतीयों की दीन-हीन स्थिति एवं पराजित अवस्था का दर्शन होता है | कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी ने 'जूठे पत्ते' कविता में अंग्रेजों को अत्याचारी एवं विप्लवकारी के नियंता के तौर पर चित्रित किया है जिन्होंने सम्पूर्ण भारतीय व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया | भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता को दांव पर लगाकर भारतीयों को अवश बनाने वाले भारतीयों पर कटाक्ष करते हुए वह लिखते हैं कि -

क्या देखा है तुमने नर को नर के आगे हाथ पसारे ?
क्या देखे हैं तुमने उसकी आंखों में खारे फव्वारे ?
देखे हैं ? फिर भी कहते हो कि तुम नहीं हो विप्लवकारी ?
तब तो तुम हिजड़े हो, या हो महा भयंकर अत्याचारी !

अरे चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को
उस दिन सोचा : क्यों न लगा दूँ आग इस दुनिया-भर को ?
यह भी सोचा : क्यों न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं जगपति का ?
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का |

नवीन जी की कविता भूख, गरीबी एवं निस्सहाय जीवन को व्यक्त करने के साथ अंग्रेजों की क्षद्र नीतियों को दर्शाती है जिस पर कवि ने खुलकर लिखा है | भारतीयों की दयनीय स्थिति को देखकर कवि 'नवीन' जी की कविता में रोष के सोते फूटते हुए दिखाई पड़ते हैं | 'गरल पियो तुम ! गरल पियो तुम !!' कविता में बालकृष्ण शर्मा नवीन जी शिव के रुद्रावतार का आवाहन करते हैं जिससे कि भय, असुरक्षा एवं आतंक के अंग्रेजी शिविरों का भेदन हो सके और स्वातंत्र्य, एकत्व का भाव संचरित हो सके -

आज रूद्र ललकार रहे हैं : अमृत पुत्र, लो, गरल पियो तुम,
आज अमर बेला आयी है, गरल पियो,चिरकाल जियो तुम;
ओ तुम चिर जीवन के प्यासे, सुन लो यह भैरव आवाहन;
हिम गिरिवर के तुंग श्रृंग से गूंज रहा है घण्टा घन-घन !
प्रलयंकर शंकर बैठे हैं खोले वरदानों की झोली;
जागो, ग्रहण करो वर उनका, बढ़े चलो टोली की टोली |

हिंदी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा की बात हो और दिनकर की बात न हो, ऐसा संभव नहीं | दिनकर भारतीय ऋषियों की आर्ष वाणी हैं जिनकी कविताओं में समूचा भारत बोलता है | दिनकर की कवितायें रूप -यौवन एवं आकर्षण की कहानी भर नहीं कहतीं बल्कि भारत की ज्ञान-चेतना एवं अपूर्व गौरव का साक्षात्कार कराती हैं | इन कविताओं में गाँधी युग और उसके प्रभाव की झाँकी तो मिलती ही है साथ ही सत्य के लिए, ज्ञान के लिए क्रान्ति-पथ का वरण करती हुई कवि की नव्य-चेतना भी दिखती है | एक तरह से कह सकते हैं कि दिनकर की कविताओं में पूरे भारत का दिग्दर्शन होता है क्योंकि यहाँ केवल रूप की छाया मात्र नहीं है बल्कि अन्तस की उदग्रता भी भरपूर है | योग-भोग, कर्म-धर्म, सत्य-निष्ठा के विविध रूपों के साथ देश-गौरव की चिंता इन कविताओं का अभीष्ट है | दिनकर एक युवा कवि के तौर पर जब सृजनरत थे तब उनकी कविताओं पर स्वतंत्रता प्रेमियों का प्रभाव पड़ रहा था,इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता | दिनकर के युवा-मन की थाह लेते हुए विजेंद्र नारायण सिंह जी लिखते हैं कि- "युवावस्था में सौंदर्य और विलास का सहज आकर्षण होता है पर जब देश-माँ के पैरों में जंजीर बंधी हो और लोग भूखे हों तब रूप-पूजा का यह समय नहीं होता है | कवि युवावस्था के सहज आकर्षण का परित्याग कर क्रांति-पथ का वरण करता है | दिनकर की राष्ट्रीयता गांधीवाद की चेतना की देन नहीं है वरन उस समय जो लोग हथियार उठाकर अंग्रेजों से लड़ रहे थे, वे ही दिनकर की राष्ट्रीयता और तज्जन्य क्रांतिकारी कविताओं के उत्स हैं|"दिनकर अपनी कृतियों में भारत की तपश्चर्या, सहनशीलता, अहिंसक वृत्ति को दर्शाते हैं और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी करते हैं क्योंकि मानवीय गुणों एवं मूल्यों द्वारा ही देश और राष्ट्र को दिशा दी जा सकती है | किन्तु उनकी कविताओं में किंकर्तव्यविमूढ़ता एवं सत्य का अनुबंध नहीं है | वे पौरूष के कवि हैं | अच्छे साध्य के लिए, सद्मार्ग एवं अधिकारों के लिए शस्त्र के वरण को वे उपयुक्त समझते हैं | 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर न्यायोचित अधिकारों की बात करते हैं और उसे हर दृष्टि से उपयुक्त समझते हैं | हिंसा-अहिंसा में सम्यक भेद स्थापित करते हुए धर्म के मार्ग पर धीर-पथिक के लिए वे हिंसा को भी श्रेयस्कर समझते हैं | कुरुक्षेत्र' के तृतीय पर्व में दिनकर लिखते हैं -

न्यायोचित अधिकार माँगने
से न मिलें, तो लड़के,
तेजस्वी छीनते समर को
जीत, या कि खुद मर के |
किसने कहा, पाप है समुचित
स्वत्व-प्राप्ति-हित लड़ना ?
उठा न्याय का खड्ग समर में
अभय मारना- मरना ?

दिनकर अपनी अधिकांश कविताओं में संस्कृति, राष्ट्र एवं राष्ट्रीय प्रश्नों को नीतिगत ढंग से उठाते हैं | उनकी कविताओं में संस्कृति को बारीक ढंग से व्याख्यायित किया गया है | दिनकर की देश-आधारित कविताओं का फलक अत्यंत विस्तीर्ण है | समूचे राष्ट्र के अतीत, वर्तमान और भविष्य की सुन्दर गाथा उन्होंने 'उर्वशी' 'रश्मिरथी', 'कुरुक्षेत्र' आदि काव्य संग्रहों में प्रस्तुत किया है | गद्य कृतियों 'संस्कृति के चार अध्याय' तो देश के ऐतिहासिक विकास की अनूठी कृति है जिसमें भारत का स्वर्णिम युग भासित होता है | स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतंत्रता के बाद की सुन्दर रेख उनकी कविताओं में स्पष्ट दिखती है | देश की स्वतंत्रता के बाद जब भारतीय पुनः मोहाग्रस्त होने लगे दिनकर ने अपनी लेखनी के द्वारा उन्हें जागृत किया | 1962 के अक्टूबर मास में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया | यह अत्यंत हृदय विदारक घटना थी, पूरा विश्व भारत की ओर देख रहा था | ऐसा लग रहा था भारत, चीनी आघात को सह नहीं पायेगा ऐसी विषम घड़ी में दिनकर अपनी डायरी में रक्त-स्नान की आवश्यकता एवं अनिवार्यता की बात करते हैं | उन्हें लगता है कि आज़ादी के महत्व को भूल चुके भारतीयों की आत्मा को झकझोरने की दृष्टि से यह युद्ध अत्यंत आवश्यक है | 27 अक्टूबर 1962 को उन्होंने अपनी डायरी में लिखा–"चीनी आक्रमण घोर शाप है, लेकिन वह वरदान में बदला जा सकता है, अगर सरकार जनता के उत्साह को दिशा दे सके | लड़ाई देर तक चले और सभी इलाकों के लोग उससे थोड़ा जल सकें, तभी जनता यह समझेगी कि आजादी कितनी कीमती चीज़ है और उसकी रक्षा कैसे की जानी चाहिए ?

रक्त-स्नान से भारत शुद्ध हो सकता है | अग्नि-स्नान से देश की ताकत बढ़ सकती है | विपत्तियों के झकोर से वह स्वराज्य ज़िंदा किया जा सकता है, जो पार्सल से आया था |"

इस तरह देख सकते हैं कि दिनकर एक सचेष्ट कवि हैं | उनकी रचनाशीलता केवल शिल्प का आग्रह भर नहीं है बल्कि उसमें भाव, सौन्दर्य एवं राग की अपूर्व छाप दिखाई पड़ती है | लोक-राग के सहारे दिनकर देश-राग को बचाने की बात करते हैं | हिंदी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा में उनके महत्त्व को भुलाया नहीं जा सकता | दिनकर भारतीय एवं पाश्चात्य ज्ञान-चेतना के गंभीर अध्येता हैं | किन्तु

उन्होंने पश्चिम के आचरण को स्वीकार नहीं किया उनकी कविताओं में भारतीय नवजागरण का प्रभाव दिखता है | और इसी प्रभाव के बल के प्रभाव से उन्होंने समूची पश्चिमी चिन्तन-धारा को चुनौती दी | पश्चिम के तर्कवाद को समझते-बूझते हुए भी दिनकर भारतीय भावबोध के अपूर्व गायक हैं | नवजागरण के संदर्भ में भारतीय चिंतकों का यह अपूर्व प्रभाव ही था कि दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का नित्यप्रति विकास होता रहा | डॉ. विजेंद्र नारायण सिंह जी इस संदर्भ में लिखते हैं कि - "नवजागरण के प्रबल बौद्धिक उद्रेक के साथ ही देशभक्ति की भावना जुड़ी हुई है | प्रवृत्ति के उत्थान से उपनिवेशवाद का विरोध सीधा जुड़ा हुआ है जो उनकी कविता का प्रमुख प्रतिपाद्य है | नवजागरण ने ही उन्हें वह सामर्थ्य दी, जिससे उन्होंने भाग्यवाद को संपूर्णतः नकार दिया | वे ऐसे कवि नहीं है जो पाश्चात्यवाद की आँधी में उड़ जाएँ | उन्होंने वंध्या बुद्धिवाद की अपेक्षा भावना को अधिक महत्व दिया | यह उनकी ही नहीं वरन हिंदी नवजागरण की भी अपनी विशेषता है |"

हिंदी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा की सबसे बड़ी विशेषता रही कि कवियों ने देश को जीवित प्रतीक मानकर नव-प्रेरणा एवं राष्ट्र-जागरण की भावना का संचार किया | अतीत की घटनाओं, दृश्यों एवं आंदोलनों को आधार मानकर कवियों ने देशहित में बात की | डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल जी इस संदर्भ में लिखते हैं कि "रागात्मक चेतना का एक दूसरा रूप वह है जिसमें कवि देश को एक जीवित-प्रतीक की तरह मानकर नमन करता है, उसकी रक्षा के प्रति सजग हो उठता है | देश का पूरा इतिहास वीरों की वीर गाथाएँ गा उठता है | चित्तौड़, हल्दी घाटी, गंगा-हिमालय उसके लिए प्रेरणा-स्त्रोत बन जाते हैं | इतिहास अतीत से वर्तमान का संवाद बन जाता है और वह जाति की धमनियों में रक्त बनकर दौड़ने लगता है |"

हिंदी की राष्ट्रीयसांस्कृतिक काव्यधारा पर विविध कवियों एवं चिंतकों का प्रभाव रहा है | भारतेंदु, इकबाल, रवींद्रनाथ, काजी नजरुल, सुब्रह्मण्यम भारती,पुट्टप्पा,सीताकांत महापात्र आदि कवियों से भाव-उष्मा लेकर हिंदी के कवियों ने जो अखण्ड भारत की सुन्दर तस्वीर खींची वह अनुपम एवं अनूठी है | कवियों एवं साहित्यकारों के साथ-साथ इस काव्यधारा पर रानी लक्ष्मीबाई, तिलक, लाला लाजपत राय, महात्मा गाँधी, सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद जैसे देश प्रेमियों के चिंतन एवं राष्ट्रप्रेम की जीवंत झलक भी दिखाई पड़ती है | हिंदी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा ने लोक से रस ग्रहण किया है | यह मात्र शब्दकारी एवं कलाकारी का साहित्य भर नहीं है बल्कि यह जीवन-धारा एवं जीवन-गति का साहित्य है जिसमें भारत की बदलती हुई परिस्थितियाँ, घटनाएँ एवं दृश्यावलियाँ जिनसे भारत की समग्र तस्वीर बनती है | "व्यापक सन्दर्भों में कह सकते हैं कि इस राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता में मानव-मूल्य, सांस्कृतिक-नैतिक मूल्य, धार्मिक-सामाजिक मूल्य परस्पर एक साथ गुँथे हुए हैं | जीवन-मूल्यों का यह तादात्म्य अन्य प्रकार की कविताओं में इस ढंग और इस रासायनिक योग से हो ही नहीं पाया है | इसका प्रधान कारण यह है कि इस राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताधारा में आनंदवादी-कलावादी जीवन-मूल्यों की प्रधानता न होकर लोक-मंगल वादी, मानववादी मूल्यों को एकांत स्वीकृति मिली है | प्रेम की यहाँ अवहेलना नहीं है पर वह व्यक्ति प्रेम से हटकर राष्ट्र-प्रेम में रूपांतरित हो गया है | जीवन के रोमानी काव्य-मूल्यों में गर्क न होने के कारण यह कविता लोक-जागरण की समग्र अभिव्यक्ति है |"

****

संदर्भ :-

1. सुधाकर पाण्डेय (संपादक), 'हिंदी काव्य गंगा', पृष्ठ संख्या- 358
2. कृष्णदत्त पालीवाल, 'मैथिलीशरण गुप्त प्रासंगिकता के अन्तः सूत्र', पृष्ठ संख्या- 126
3. सुधाकर पाण्डेय (संपादक), 'हिंदी काव्य गंगा', पृष्ठ संख्या- 438-439
4. मैथिलीशरण गुप्त, 'भारत भारती', पृष्ठ संख्या – 14
5.मैथिलीशरण गुप्त, 'भारत भारती', पृष्ठ संख्या – 163
6. मैथिलीशरण गुप्त, 'भारत भारती', पृष्ठ संख्या – 166
7. चंद्रा सदायत' (संपादन), 'सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृष्ठ संख्या- 130
8. सुधा चौहान, 'भारतीय साहित्य के निर्माता सुभद्रा कुमारी चौहान', पृष्ठ संख्या- 14
9. सुधा चौहान, 'भारतीय साहित्य के निर्माता सुभद्रा कुमारी चौहान', पृष्ठ संख्या- 20
10. चंद्रा सदायत' (संपादन), 'सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृष्ठ संख्या- 106
11. चंद्रा सदायत' (संपादन), 'सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृष्ठ संख्या- 92
12. चंद्रा सदायत' (संपादन), 'सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृष्ठ संख्या- 93
13. चंद्रा सदायत' (संपादन), 'सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृष्ठ संख्या- 96
14. नरेशचंद्र चतुर्वेदी (संपादन), 'बालकृष्ण शर्मा नवीन काव्य रचनावली', पृष्ठ संख्या- 1176
15. नरेशचंद्र चतुर्वेदी (संपादन), 'बालकृष्ण शर्मा नवीन काव्य रचनावली', पृष्ठ संख्या- 1223
16. नरेशचंद्र चतुर्वेदी (संपादन), 'बालकृष्ण शर्मा नवीन काव्य रचनावली', पृष्ठ संख्या- 1165
17. विजेंद्र नारायण सिंह, 'भारतीय साहित्य के निर्माता रामधारीसिंह दिनकर', पृष्ठ संख्या-62
18. नंद किशोर नवल,तरुण कुमार (संपादन), 'रामधारी सिंह 'दिनकर' रचनावली',भाग-05, पृष्ठ संख्या-77
19. नंद किशोर नवल,तरुण कुमार (संपादन), 'रामधारी सिंह 'दिनकर' रचनावली',भाग-13, पृष्ठ संख्या-211
20. विजेंद्र नारायण सिंह, 'भारतीय साहित्य के निर्माता रामधारीसिंह दिनकर', पृष्ठ संख्या-53
21. कृष्णदत्त पालीवाल, 'मैथिलीशरण गुप्त प्रासंगिकता के अन्तः सूत्र', पृष्ठ संख्या- 150
22.कृष्णदत्त पालीवाल, 'मैथिलीशरण गुप्त प्रासंगिकता के अन्तः सूत्र', पृष्ठ संख्या- 159

आत्मकथा 'नागफनी' में अभिव्यक्त दलित संघर्ष

डॉ. रमेश मनोहर लमाणी
At-Post-Siddapur (Shivnagar)
Taluka-Bilagi, Dist- Bagalkot
Pin-587 117, State- Karnataka
Contact No.- 9620376647

रूपनारायण सोनकर हिंदी जगत के लिए जाना पहचाना नाम है। वास्तव में रूपनारायण सोनकर की आत्मकथा नागफनी केवल एक समाज, एक व्यक्ति की आत्मकथा नहीं है। सभी दलितों एवं समस्त दलित समाज की आत्मकथा है। आज तक जितनी भी दलित आत्मकथाएँ लिखी गयी हैं यह उनसे बिलकुल अलग है। प्रख्यात साहित्यकार व हंस के संपादक राजेंद्र यादव ने सितंबर 2006 के संपादकीय में नागफनी के बारे में लिखा है। "अभी तक जितनी भी दलित आत्मकथाएँ आयी है उनमें हाय मार डाला की चीखें हैं लेकिन 'नागफनी' में हाय मार डाला की चीख नहीं सुनायी पड़ती है, लेकिन नागफनी में संघर्ष है- जिसको अंग्रेजी भाषा में साइलेंट रेन्यूलूशन कहा जाता है।" वास्तव में राजेंद्र यादव की यह टिप्पणी बहुत मायने रखती है और नागफनी को एक क्रांतिकारी कृति प्रतिस्थापित करती है।

आत्मकथा का प्रारंभ नसेनियाँ गाँव में लगनेवाले "ज्वारों का मेला" से होता है। इस मेले की खासियत यह थी कि सिर्फ ताकतवर समाज की स्त्रियाँ जौं के दाने से सजे कलश को अपने सिर पर धारण करके चलती थी जिसके पीछे अन्य स्त्रियों का झुंड चलता था। इस मेले में दलित स्त्रियों को कलश धारण करने का अधिकार नहीं था। तीस वर्ष पूर्व नसेनियाँ गाँव में यही परंपरा कायम थी । लेखक ने तीस वर्ष के बाद गाँव नसेनियाँ में आये परिवर्तन को भी उजागर किया है। तीस वर्षों के पश्चात् जब लेखक की चाची ने अपने सिर पर "जौ दाने के कलश" को सिर पर धारण किया तो ताकतवर वर्ग के लोगों द्वारा उनकी पिटाई की जाती है और उनके उपर समाज के ताकतवर वर्ग के लोग जोर से गरजते है, "ससूरी खटिकिन तेरी यह हिम्मत ! देवी के कलश को अपने सिर पर रखकर भ्रष्ट कर दिया।"[127]

चाची के अपमान को देखकर मेले में मौजूद सभी दलित युवा, बुजुर्ग और औरतें इकट्ठा होने लगे और समाज के ताकतवर वर्ग के लोगों को मुँहतोड जवाब देते हैं और अंत में दलितों ने माँग की, कि "तथाकथित ताकतवर वर्ग के लोग अपने किए पर पश्चाताप करे, और दलित महिलाओं को भी पीतल का कलश सिर पर रखकर चलने दें।"[128] तब उन लोगों ने पश्चाताप करते हुए पीतल का कलश मेरी चाची के सिर पर रखा। समस्त दलित बच्चे जवान बूढ़े और औरतें उछल पड़े ढोल नगाड़े,हुड़क –जोरी, जोर-जोर से बजने लगे। दलित महिलाएँ, लड़कियाँ, जोर-जोर से नाचने लगे थे। सैकड़ों सालों बाद दलित औरतों ने समता का अधिकार पाया था जिसकी खुशी नाच गाने में परिवर्तित हो गयी थी।

दलित स्त्रियों से जुडी दूसरी घटना प्रसंग होली के अवसर पर दिखाई देती है। होलिका दहन पर गाँव के सभी स्त्री पुरुष, बच्चे, इकट्ठे होते हैं। इस मौके पर भी ताकतवर वर्ग के लोगों द्वारा स्त्री को गालियाँ दी जाती है। यह गालियाँ जाति का नाम लेकर दी जाती है जिसके पीछे ताकतवर वर्ग के लोगों का मकसद सिर्फ दलित स्त्रियों को अपमानित करना होता है। लेखक ने अपने गाँव के उदाहरण के माध्यम से इस अपमानित परंपरा का भी मुँहतोड़ जवाब दिया है। संसार के किसी समाज में ऐसी क्रूर प्रथा नहीं जहाँ औरतों को अपमानित करके जश्न मनाया जाता हो। सोनकर जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लड़ाई का जवाब लड़ाई से करते हैं। किंतु अंत मानवता के साथ करते हैं। लेखक यह बात स्थापित करते हैं कि जब तक अन्याय सहते रहेंगे तब तक दलितों की यही स्थिति कायम रहेगी। लेकिन जब अन्याय का प्रतिरोध किया जायेगा तो यह परंपरा समाप्त होगी। लेखक दलित एकता की बात कर रहा है।नागफनी में एक और दारुण प्रसंग हैं-'हरिशंकर का बंधक भदइया चमार यह प्रसंग दिल को उद्वेलित करता है। भदैइया चमार का बस इतना ही कसूर था कि उसने बेगार करने पर भी पैसे नहीं दिया था। जिसके कारण उसने हरिशंकर और उनके उच्च वर्ग के साथी भदया चमार की इतनी बेरहमी से पिटाई करते हैं कि जुल्म की सारी हदें पार कर जाते हैं। ऐसे जुल्म समाज में उच्च वर्गों द्वारा सदियों से दलितों पर बरपाये जा रहे हैं। आप दलित भाइयों पर अंग्रेजों से भी ज्यादा अत्याचार कर रहे हैं। जब अंग्रेज भारतियों पर इसी तरह के जुल्म करते थे।चाहे जिस जाति पर अत्याचार होता था-तो सभा जातियों के लोग अंग्रोजों का सामना करते थे।"[130]"नीच कहीं के हमें अंग्रेज बना रहा है तो देख जो अत्याचार अंग्रेजों ने भारतियों के साथ किया था, हम उससे ज्यादा अत्याचार तुम लोगों के साथ करके दिखायेंगे। सारे दलित अंग्रेजों के द्वारा किये गये अत्याचारों को भूल जायेंगे । हमारे अत्याचार याद रखेंगे।"[131] इससे कैसे मुक्ति पा सकते है इसका जवाब नागफनी में सोनकर की लेखनी द्वारा स्पष्ट हुआ है।

नागफनी में ऐसी कई घटना प्रसंग है जो दिल को गहराई तक उद्वेलित करती है। एक प्रसंग ऐसा है जिसमें समाज के अगुआ वर्ग के व्यवहार से ग्लानी होने लगती है। इलाहबाद विश्वविद्यालय की एम.ए उपाधि रो पड़ी लेखक का छोटा भाई अजय इलाहबाद विश्वविद्यालय से एम.ए पास करने के बाद आई.ए.एस. की परीक्षा देकर गाँव आता है। हरिशंकर उससे जबरन ताकत के बल पर गोबर और कंडे दुलवाता है। अजय के इनकार करने पर गाँव के दबंग ने हरिशंकर की शह पर अजय को पकड़ लिया। हरिशंकर गाली देते हुए बोला "साले ! अगर एम.ए. पढ़ गया है तो इसका मतलब यह नहीं है कि तू हमसे बड़ा हो गया है। हमारी बात को काट दे। जिस भी चमार , कोरी, खटिक, भंगी पासी ने हमारी बात काटी उसकी खैर नहीं। अभी हम लोग तुझे समझा रहे हैं। बात हमारी मान ले।"[132] अजय ने कहा "मैं इलाहबाद विश्वविद्यालय से एम.ए पास करके आई.ए.एस. की परीक्षा देकर आया हूँ। मैं ने बाबा साहेब डॉ.अंबेडकर का संविधान पढ़ा है। संविधान के अनुसार किसी आदमी से जबरदस्ती कंडे/गोबर उठवाना अपराध है। आप मुझ से ताकत के बल पर बेगार नहीं करवा सकते हैं।"[133]वास्तव में यह अपमान लेखक के छोटे भाई का अपमान नहीं था बल्कि एक विश्व के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय से प्रदान की गयी डिग्री का अपमान था, लेकिन डिग्री में ऐसी ताकत है जो अत्याचारियों को परास्त करने अदम्य साहस रखती है।

वास्तव में इस तरह की घटनाएँ हमारे देश के गरिमा पर कलंक हैं जो दलितों,निर्बलों,असहायों पर होते रहते हैं। दलितों की शिक्षा,और उन्नति उनको चुभती है। वे लोग उच्च शिक्षित दलितों को जोर जबर्दस्ती से बंधुआ मजदूर बनाकर रखना चाहते हैं। अनपढ़ और

दलितों के सामने उच्च शिक्षित दलित कुछ भी नहीं है, यह अपमान दलितों में फोड़ा बन जाता है। जिसमें मवाद भर जाता है। फोड़े से मवाद को निकाले बगैर दलितों को राहत नहीं मिलती है। नागफनी में फोड़ा फूटता है मवाद बाहर निकलती है दलितों को राहत मिलती है। नागफनी की यही विशिष्ठता है। इसी कारण नागफनी में एक चुंबकीय आकर्षण है। नागफनी द्वारा दलित समाज में चेतना पैदा होती है।

दलित साहित्य के सौंदर्य को लेकर भी बहुत विवाद आलोचकों में छिड़ा है। इस आलोचना का जवाब भी सोनकर जी ने नागफनी लिखकर दे दिया है। सोनकर द्वारा प्रयुक्त भाषा,प्रतीक, बिंब, उपमाएँ अपने आप में बेजोड़ हैं। दलित साहित्य के सौंदर्य शास्त्र के मिथ को भी यह आत्मकथा तोड़ती है। सुअर दान उपन्यास का युद्ध वास्तव में प्रतीक बनकर आय है। यह प्रतीक कमजोर और ताकतवर के बीच नजर आता है। **जानवरों** के युद्ध के माध्यम से लेखक ने व्यक्तियों के युद्ध को उजागर किया है। सदियों से जिस छल,फरेब का सहारा ताकतवर अपनाते रहे हैं वहीं छल फरेब जानवरों के युद्ध में भी दिखायी देता है। प्रतीकात्मकता अनूठी है जिसे गढ़ने में उन्हें सफलता हासिल हुई है। काली रात बीत चुकी थी। चिड़िया चहचहाने लगी थी। असमान में लालिमा छायी हुई थी। सूरज उग रहा था।"[134] जैसी भाषा प्रयुक्त करके लेखक ने दलितों में आयी चेतना को बखूबी प्रकट किया है। ऐस काव्यात्मक भाषा का प्रयोग नागफनी में कई स्थलों पर हुआ है। तमाम ऐसे कहावतें दलित साहित्य में प्रयुक्त होती रही है। इसका जवाब भी सोनकर जी ने नागफनी में दिया है। यह लेखक की भाषा का ही कमाल है कि वे चुभती बात भी संयमित ढंग से करते हैं।

नागफनी शीर्षक भी प्रतीकात्मकता लिये हुए हैं। नागफनी का काँटे नुकीले होते हैं इन काँटों की विशेषता होती है कि ये कभी भी सूखते नहीं है। शरीर में लगने पर भी हरे रहते हैं। शरीर में प्रवेश करने पर बहुत पीड़ी देते हैं। उसी प्रकार जैसे जातिवाद असमानता, आर्थिक पाखंड, अंधविश्वास नुकीले काँटे हैं, जो भारतीय समाज को पीड़ा पहुँचाते हैं। इन सबसे छुटकारा तेज ज्ञान रूपी औजारों से हो सकता है और यह तेज औजार सोनकर जी की कलम है। यह कलम तलवार से भी ज्यादा पैनी धारधार है जो अमानवीय व्यवहार करनेवालों को अपनी भाषा की शक्ति से ध्वस्त कर देती है। जिस प्रकार नागफनी के काँटा को निकाले बिना चैन नहीं पड़ता उसी प्रकार जब तक समाज से समरसता का अभाव और गैर बराबरी है तब तक एक सर्वजन समाज का निर्माण नहीं हो सकेगा। लेखक नागफनी शीर्षक के माध्यम से यही बात कह रहा है।

नागफनी दलित समाज को अंधविश्वास,पाखंडता से बाहर निकालने में एक बहुत ही क्रांतिकारी भूमिका अदा करने जा रही है। सदियों से पीड़ित समाज अज्ञानता के कारण डरा हुआ है। एक प्रसंग में लेखक से शिवभजन जबरन अपने मंदिर की पुताई करवाता है। लेखक अपनी जान की परवाह न करते हुए रस्सी से लटककर मंदिर के ऊपरी भाग की सफाई व पुताई कर देता है। अपने मित्रों के अनुरोध पर अखंड पाठ में भाग लेता है। शिवभजन लेखक को अखंड पाठ में बैठा देखकर आग बबूला हो जाता है। " इस अछूत को रामचरितमास की चौपाई पढ़ने का कोई अधिकार नहीं है, यह अखंड पाठ खंडित हो जायेगा।"[135]और लेखक को वहाँ से अपमानित करके भगा देता है।

****

https://shodhutkarsh.com/

Dedicated for Research
Shodh Utkarsh

ISSN-2993-4648

Gmail-shodhutkasrsh@gmail.com